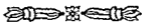




# सुबोध-संग्रह.

संग्रहकर्ता

बालब्रह्मचारी शान्त्रोद्धारक  
श्रीअमोलक ऋषिजी महाराज.



प्रसिद्धकर्ता

श्रीमनि महासनीजी  
श्रीमेहताव कुंवरजी महाराज का  
नपोत्सव फण्टा की सहायता से  
जैन साधुमार्गी संघ धुलिया, ( पश्चिम खानदेश ).

प्रथमावृत्ति

पत्र १०००

}

मूल्य--सद्वर्तन.

{

श्रीवीराब्द २४५३

{ विक्रमसम्बन् १९८६



## प्रस्तावना.



इसबक्त में ज्ञान प्रसार के लिये यंत्रिक साधन की सहायता होनेसे ज्ञान श्रद्धा के दृष्टि को ज्ञान के फेलाव का खूबही प्रयाम कर रहे हैं. जिधर देखो उधर पुराना या नवीन साहित्य उसही रूपमें या रूपान्तरमें लक्ष्यों पुस्तको द्वार प्रसिद्धीमें आया है आरहा. है औरभी खूबही आने की आशा है. जिस हेतु और जिस उत्सहा में रचयिता संग्रहिता लेखनी चलांत और प्रकाशक द्रव्यव्यय कर प्रसिद्धीमें रखते हैं उमही उत्सहा से ग्रंथको पाठको ग्रहण करने देखे जाते हैं अर्थात् पुस्तक प्रसिद्ध होने की जाहीसात होतेही वे हजारों पुस्तको खूबही कालमें घीतीर्ण होजाती है. क्याही अच्छा हो यदि उसका वैसाही उपयोग हो तो आज यह भारत धर्म उसही पोषक को उते पुनः पोषक बन जावे कि जैसे पुर्व कालमें अंकितो का तोपनाना.जिससे यह आयोज्य मधी देशमें 'आदर्श' बन रहाथा. वैसाही बन जावे इसलिये विज्ञति है कि यह अहो पाठक गणों ! यो 'सुबोध मंत्रद' नाम स्थापन कर जो पुस्तक आपके कर कमल में उपस्थित हुआ है. इसमें संग्रहित ग्रन्थों कोइ 'नवीन' नहीं है किन्तु परार्चान और अनेक वक्त प्रसिद्धी आयें हुए है. १. प्रथम जो छंद दिये गये है वे मंगल रूप सदैव

पठन के योग्य हैं. २ जो शान्ति प्रकाश है सो उसके अर्थ धर्मार्थ का निधिध्यासनपूर्वक पढ़कर उपदेश वर्तन में लानेसे आत्मा में अवश्यही शान्ति का प्रकाश होता है. ६ समाधि मरण है सो आयुष्य के अन्त के निकट वनी को श्रवण करा उस प्रमाणें वर्तन करने सूचित करने से वह ममार्थी से आयुष्य पूर्ण कर भविष्य में सुखी हो सकता है. ४ दूसरा समाधी मरण का भी यह मतलब है. किन्तु यह आतुरता के समय सुनाने का है. ५ इस के नीचे सामारी संधारा का पाठ रखा है वह भी भव भीरूओं के लिये सदैव उपयोग में लेने जैसा है. ६ रत्नाकर पचीसी आत्मा को सम मार्ग में प्रवर्तित कराने एक सूत्रूपदेशक का जैसा सद्योपकारता है ७ मैरी भावना भी समार्ग में प्रवर्तक को सूचित करने मार्ग दर्शक के समान है. ८ उपदेश शतक का प्रथम श्लोक तो मंगला चरणार्थ अन्य ग्रन्थ का मैंने रखा है. बाकी के श्लोक अन्य पुस्तक में गुर्जर भाषा में छपे हुए हैं. जिसका मैंने हाथ से उताग कर अर्थ का शुद्धी बृद्धी के साथ अनुवाद किया है. श्लोक अशुद्ध दृष्टि पडने से कच्छ देश पावन कर्ता आठ कोटी मोटी पक्ष के परोपकार परायण कवीश्वर प्रवर पंडित युवाचार्यजी श्री नागचन्द्रजी महाराज पास भेजे थे. उन महा पुरुषोंने कृपा कर शुद्धी बृद्धी कर अन्तिम के दो नवीन श्लोक बना कर पीछे भेजे. यह ग्रन्थ जैन

कृत नहीं हैं, किन्तु उपदेशक व्याख्यान-दाताओं के वाक्यलंकार के लिये बड़ा उपयोगी है. ९. पूच्छीसः णं सुयगडाङ्ग सूत्र का छटा अध्याय वर्तमान साधनाधीश श्री महावीर स्वामिजी महाराज के गुणों का संक्षिप्त में वर्णन है, यह प्रत्येक जैनों को निपटन मनन करने योग्य है. और १० नमिप्रवज्या [ उत्तराध्ययन सूत्रका ९ वा अध्याय ] इसका भी पाठ करनेका इसवक्त जैन साधुमार्गीयों में बहुत रिवाज है. इसलिए यह भी रसदिया है. इस में कथित इन्द्रकृत ग्रन्थों का उत्तर जो नमिराय ऋषि ने दिया है. वह प्रत्येक मुमुक्षुओं को मनन करने योग्य है. वह दोनों अध्याय अर्धमागधीनपराचीन आयों को परम माननिय भाषा में है. इसका अर्थ अर्वाचीन वर्तमान के बहुत से पाठकों के समझ में आना मुश्किल जान. सहज समझ जावे ऐसा प्रत्येक गाथापर छन्द-बन्ध भाषानुवाद भी मैंने यथा मति रचकर रखा है. इत्यादि महा-मतीजी की सूचनानुसार बोध मय ग्रन्थों को यह ग्रन्थित होने के कारण इसका नाम "सुबोध संग्रह" रखा है. आशा करता हूँ कि पाठकगण इसमें संग्राहित ग्रन्थों का वक्तोवक्त यथोचित उपयोग कर सुखी बनेंगे.

हितेच्छुः—अमोलक ऋषि.



## ॥ महातपस्विनी जी श्री मेहताव कुंवरजी का परिचय ॥

मालव देशके धारस्टट में रहे नागदों ग्राम के नियामी औसवाल बंशज पुण्यात्म अनेक बतों के पालक निरंतर सदैव मामाधिक ब्रतके समाचरक श्रमणोपाक शंठ मोतीलालजी चौराष्टिया की धर्मात्मा शीलव्येनां सती धर्म पत्नी दोलीबाई से सम्बत १९५३ चैत शुक्ल चतुर्थी बुद्धवार को जो कन्या स्तन उत्पन्न ऊआ जिसका नाम सुन्दर बाई रखा. और सम्बत १९५९ के अपाठ शुक्ल सप्तमी को शंठजी का म्वर्ग घास हुआ तब दोलीबाई आशासे था. जिससे सो १९५९ कार्तिक के शुक्ल ६ को जो कन्यारत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम मुरजबाई रखा. पती वियोगसे उद्विग्न चित्त कां शांति के लिये अपनी पुत्री दोलीबाई को बदनायर निवासी शंठ द्विराचंदजी काटेड झालारवाले के सुपुत्र ईंकारलालजी और गेंदीबाई आदि सब कुटुम्ब मिल अपने घर को लगे और धर्म निष्ठा सुव्रति गेंदीबाई ने अपनी पुत्री को दोनों पौत्री सहित बड़े प्रेम में मुख मामत्री और धर्मापदेश से पोष तोष संतुष्ट की, धर्म में आत्म रमण होनेसे दुःख मंद हुआ उक्त महातपस्विनी महासती श्री उमाजी महा प्रभाविक व्याख्यानी महोसती केशरीजी ठाणा से वहां पधारे और कहा कि बाई तुमारे मामाजी घोर नपस्वी पंचद्रव्योपगी सर्व आहार के परित्यागी निरंतर बेले २ पागणा के कर्ता श्री स्वरूप चंदजी

महाराज जिन प्रकार आत्म कल्याण कर रहे हैं वैसेही तुम भी करना चाहिये. कालान्तर में दोलीबाइ को स्वप्न में स्वरूपचंद्रजी महाराजाने सूचित किया कि जो आत्म कल्याण करना हो तो १२ महिने के अन्दर करलो. इत्यादि सम्बन्ध से दोलीबाइ को वैराग्य जाग्रत हुआ और दीक्षा की बात करी. यह समाचार बाइके मामी सुसरा दुलीचंद्रजी को मालम होनासे वे बाइको आपने घर ले गये और बाइका दिल किसी प्रकार से दुःख नहीं पावे ऐसी तरह रखने लगे. तैमही बाइके फाकी सुसरा उँ कारलालजीभी सार-संसार अच्छी करने लगे किन्तु बाइका वैराग्य कम हुआ नहीं. और अपना इष्टार्थ साधने जिनके घर अंदाज ४०-५० दीक्षा हुइ होगी ऐसे धर्म दोषकराजमान ध्रामान शेटजी गोपालजी पद्मालालजी की दुकानके मालक धर्म धुरंधर पुण्यप्रभावक मुक्तभावक भाइजी मांतीलालजी किछे धारवालेको बाइने अपना हेतू दर्शाया. शेटजी ने कहा कि दोनों बच्ची नादान हैं. इनके होंशार होनिबाद दीक्षा लेलेना. किन्तु बाइने कबूल नहीं किया. तब शेटजीने बड़ी पुत्री मुंदरबाइसे पूछे उसनेभी कहा कि भगो दीक्षा लेवूंगी. दोनोंको बहत परचाइ किन्तु किंचितभी चली नहीं, तब शेटजीने कहाकि तुम दृढ़ मही तो तुझारी इच्छा पूर्ण हो जायगी.



दोलावाइके दोनों पक्षवालों को यह समाचार मालूम पड़ने में वे धार आये और दोनोंको बहुत समझाइ- किन्तु किंचितही माना नहीं। तब राजमें किर्यादकी राजा माहवने दोनोंको बोलाइ तब शेटजी ने कहा हमारे घरने की खीयों दरवार में आ नहीं सकती है। तब सरकारने अहलकारोंको शेटजीके घर भेजकर वाइकी ज्वानी ली। बहुत ममझाइ- किन्तु निश्चय नहीं पलटा, तब सुन्दर वाइसे कहा तुमारी शादी की आयगी, सब प्रकार सुख पावोगी दीक्षा मत लो इत्यादि, मुनकर सुन्दर वाइने कहा यदि तीन वातका बन्दोवस्त हो तो मैं दीक्षा नहीं लेवूँ, न्यायाधिगने पूछा क्या ? वाइने कहा “ १ मैं रांड [ विधवा ] नहीं होवूँ, २ मेरी मां नहीं मेरे और ३ मैं नहीं मरूँ ” दशवर्षकी नन्ही बच्चीके मुहसे यह मुन सवही आश्चर्यचकित बन गये, लोगोंके आँखोंसे आश्रु छूट पड़े और आखीर में नाइलराज सभी कुटुम्बियोंने रुदन करते आशा प्रदानकी, परमपूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की संप्रदायके प्रभाविक पूज्य श्री नन्दलालजी महाराज तम्र पाठविय मिथ्यातिभिरमारतंड पूज्य श्री माधवमुनिजी महाराज, तम पाठविय ज्योत्यान वाचम्पति पूज्य श्री चम्पालालजी महाराजके अनुचार्य श्रविर मुनि श्री ताराचंदजी महाराज आदि मुनिवरों और सति-शिरोमणि महासतीजी श्री वालीजी महाराज, विद्वय महासती श्री बड़े मन कुवरजी महाराज आदि मनियों उमथकन धारा नगरी में उपस्थित

थे; वे सबभी बर्गाचेंमें पधार और हाथी घोटें सकडा की पुस्त्यों के परिवारसे वादित्रेम वजार गर्जति दोनो वैरागण वाड को उल्लम वस्व-भूषण से भाज्ज कर जयद्रवर्नसि वधाते वगिचेंमें लगये और मंत्रत १०६३ चेत शुक्रा १३ को मविधी दीक्षा दिलाकर दोनी वाडका महनाव कुवरजी नाम स्थपन कर महासती यड मन कुवरजीकी चर्या दोनो को बनाड गड. छोटी पुत्रि मुरजवाड को गर्दावाड अपने माथ मव परिवार के साथ लेकर स्वस्थान गड. दोनो मृतियों ज्ञानाभ्यास तप संवम में आत्म रभण करने लगी.

कितनेक वर्ष बाद माहमती यों का बदनावर पधाग्ना ऊथा वहां सूर्यवाड दर्शनार्थ आड, माता भर्मी का माध्वी के दर्शन से और तारतालाप से मुरजवाड को भी वैराग्य जाग्रत हुआ, माता के साथ जाने लगी किन्तु परिवार न जाने नहीं दी. और जब महासतियों का भार पधारना हुआ तब कारण वशान् मुरजवाड का भी वहां आना हो गया. महासतियों के दर्शन कर दीक्षा की इच्छा प्रगट की सतीजी ने यह बात शेटजी मोतीलालजी को दर्शाई. शेटजीने मुरजवाडसे पूछा परिणाम निश्चल देख. खुशी हुए. कुटुम्बियों की खबर होतेहा सब जने आये. उक्त प्रकार बहुत पर्येन किया किन्तु डिगा सके नहीं. तब सं. १०७१ मृगश्र शुक्रा ३ को महासव पूर्वक दीक्षा दिलाकर श्री सुंदर कवरजी की शिष्या बना दीगई. इन्हीके पास, सं. १०७८ मृगश्र शुक्रा ५ को

दीक्षा ली जिनका नाम तेजकरजी रखा. यह चारोंही ठाणे  
 ग्रामानुमान विहार करने खानदेश पधारे और सं. १०८५ का  
 भुमावल में चौमास किया. यों चारों सर्तियों धर्म दीपा रही है।

यह पुस्तक प्रसिद्ध कैसी हुई ?

सं. १०८५ महासुद १३ गुरुवार को बालब्रह्मचारी श्री अमो-  
 लक ऋषिजी महाराज. वृद्धि मुनि श्रीराज ऋषिजी महाराज. तपस्वी  
 राजश्रीउदय ऋषिजी महाराज. विद्याविलासी श्रीकल्याण  
 ऋषिजी महाराज. विनीत विचक्षण श्री मुल्तान ऋषिजी महाराज  
 ग्रामे ५ धुलिये शहर पधारे. यहां कारण वशात् अधिक  
 काल रहना हुआ. तब श्रीअमोलक ऋषिजी महाराज श्री से मिलने  
 प्रसिद्ध वक्ता महामप्रभविक व्याख्यानी श्री चौधमलजी महाराज  
 ग्रामे ३ पधारे. एकही स्थानमें बड़े प्रेम से रहे. व्याख्यानादि द्वारा  
 धर्म का खूब उद्योग हुआ. इनके विहारहुअे बाद बंबई सेहर  
 का चौमास दीपाकर स्थविरं भगवंत महा भागवान श्री ताराचंद्रजी  
 महाराज. पंडित सुव्याख्यानी श्री किसन लालजी महाराज. प्रभाविक  
 व्याख्यानी शांत दांत श्रीसांभाग्यमलजी महाराज. वृद्ध मुनिश्री  
 वच्छराजजी महाराज, पंडित कविराज श्री सुरजमलजी महाराज.  
 घोर तपस्वी और वैयावची श्री भगवानदासजी महाराज. तपस्वीजी  
 श्रीकेशरीमलजी महाराज. ठाणे. ७ धुलिये पधारे. एकही स्थानमें बड़े  
 प्रेम में रहे. विद्वान मुनि श्री केवलचंद्रजी ने २५ अवधान किये.

इससे भी धर्म खूब दीपा. इन महाराज के दर्शनार्थ तपस्वीजी महा  
मती श्री मेहताय कंवर्जी महाराज, सुब्बाख्यानी श्री मुंदरकरजी  
महाराज, बालप्रद्वचारीणी कवीयत्री श्री सुरजकरजी महाराज,  
विर्नात बैयावचां श्री नेत्रकरजी महाराज ठाणा ४ पधारे श्री  
तारानंदजी महाराज तो ग्गलाभ की तप विहार करगये और  
महामतीजी का इरादा श्री अमोल ऋषिजी महाराज के मेले  
चौमासा करनेका होनेमे विनंती पूर्वक चौमासा कराया. चौमासे  
में १२५ के अंदाज अठाइ आदि बडा तप ३५, म्कन्ध तथा  
३-४ हजार मनुष्यका दर्शनार्थ आगम हुआ इत्यादि खूब धर्म तप  
हुआ. जैन जैनेतर मधही कहते हैं कि ऐसा चौमासे का आनन्द  
आजतक कभीभी यहां नहीं आया. -

महामती श्री मेहताय कंवर्जी ने ३२ उपवासका तप किया था  
उमवक्त ४००-५०० मनुष्य बाहिर ग्राम के दर्शनार्थ आये थे  
उम वक्त ज्ञान वृद्धी के चाम्ने कुल चन्द हुआथा. उसके खरच  
मे यह पुस्तक प्रमिद्धी में रची गइ है जी.

गुणानुगामी—मोतीलाल.

प्रकाशकः—श्रीमती महासतीजी

श्रीमहताव कुंवरजी महाराज का तपोत्सव फण्डकी सहायतासे  
धुलिया ( प. खानदेश ) का जैन श्री संघ तरफसे  
सेठजी पृथ्वीराज हेमराज दुधेडिया.



मुद्रकः—कालिदास निताराम पंडित  
समर्थ छापखाना,  
आमरोड धुलिया, पश्चिम खानदेश.

ॐ नमः सिद्धं

# सुबोध-संग्रह

महालाचरण

॥ श्री प्रमेष्टी परमानन्द छन्द ॥

॥ दोहा ॥

ॐ नमो अरिहंताणं । इम पांचुं पदमाय ॥

ॐ नमो श्रीं श्रीं स्वाहा । जपना न्ही श्री थाय ॥ १ ॥

१०८ अ. सि. आ. उ. सा. ।

॥ त्रिभेगी छन्द ॥

प्रणमुं सरम्बती । होयवर मती । चित्त हृत्से अति । गुण धुणवा ॥

शुद्ध भावे ध्यावे । सो मुख पावे । एक चित्त चहावे । यज्ञः सुणवा ॥

जय जय परमेष्टी । जगमें श्रेष्टी । दे पद जेष्टी । जगधारं ॥

त्रांजग मझारे । नाम उदारं । जय सुखकारं । नवकारं ॥ १ ॥

धारे गुणवंता । श्री अरिहंता लोक महतां । गुण गेहरा ॥

घन घातिक कर्म । मिथ्या भर्म । त्याग अधर्म । विष लेहरा ॥

शुक्र मनध्याया । केवल पाया । इन्द्र आया । तिण वारं ॥ त्रि॥२॥  
 वर परिपद वारे । हर्ष अपारे । मुणि अवधारे । चिनयाणी ॥  
 अमृत मे प्यारी । जंग हितकारी ॥ मुर नर नारी । पहचाणी ॥  
 केइ संयम धारे । केइ व्रतधारे । कर्म विदारे । शिवत्यारं ॥ त्रि॥३॥  
 द्वितीय पद ध्यावो । सिद्ध गुणगावो । फिर नहीं आवो । तिहां जाई ॥  
 जे अलख निरंजन । भवि मनरंजन । कर्म के भंजन । शिव सांई ॥  
 पुद्गलदा फंदा । दूर निकंदा । परमानन्दा । अविकारं ॥ त्रि ॥ ४ ॥  
 अष्ट गुण कों धरे । जगत् निःशारे । काल नमारे । उनतांई ॥  
 जिहां मुख अनंता । केवलवंता । गुण उच्चरंता । छे नाई ॥  
 निज वास बताइ । धो मुझतांई । तुमसा नाहीं । दातारं ॥ त्रि ॥ ५ ॥  
 गणिवर पद तीजे । नित्य नमीजे । सेवा कीजे । हर्ष धरी ॥  
 पंच महाव्रत पाले । दूषण टाले । गजजिम माले । शूर हरी ॥  
 पांचे वश करते । पंच उचरते । पांचूही हरते । दुःखकारे ॥  
 त्रि॥६॥ दांतल जिमवंदा । अचल गिरंदा । गणपति इंदा । शिरदारं ॥  
 सागर जिम गहेरा । ज्ञान लेहरा । मिथ्या अन्धेरा । परिहारं ॥  
 मम्पद वंसु पाये । न्याय बढ़ावे । पाले पलावे । आचरं ॥ त्रि ॥ ७ ॥  
 गुरु मेवा सार्धी । विनय आराधी । चित्त समार्धी । ज्ञान भणे ॥  
 चोरे अंग वाणी । पेटी समाणी । पूर्व णाणी । संशय हणे ॥  
 निर्वच सत्य भाखे । शाख माखे । गुण अभिखाखे । निजसारं ॥ त्रि ॥ ८ ॥  
 उदकाया म्दामी । अन्तरयामी । शिव गन गामी । हितकारी ॥

शोखग ने आवे । योग शिखावे । न्याय बतावे । उपकारी ॥  
दुर्गातिमां पडतो । कादव गडतो । चित करे चडतो । तिणवारं ॥ त्रि  
॥ ९ ॥ कञ्चुक अही त्यागे । दूरा भागे । तिमवरागे । पाप हरे ॥  
शुठा पर छन्दा । मोठनी फन्दा । प्रमुका बन्दा । योग धरे ॥  
सब माल खजीना । त्याग न कीना । महामत लीना । अणगारं ॥ त्रि  
॥ १० ॥ पाले शुद्ध करणी । भवजल तरणी । आपद्र हरणी । दृष्टी रसे ॥  
बोले सत्य वाणी । गुप्ति ठाणी । जगका प्राणी । सम लखे ॥  
शिव मार्ग ध्यावे । पाप हटावे । धर्म बढावे । सत्यसारं ॥ त्रि ॥ ११ ॥  
ए प्रणम भावे । विघन हटावे । अरी हरी जावे । दूर सही ॥  
जे तप तेजारी । दुःख विमारी । सौग सवारी । आत नहीं ॥  
ग्रह पांडा भागे । दृष्टी न लागे । शत्रु न जागे । लीगार ॥ त्रि ॥ १२ ॥  
ये मंत्र नीको । तारक जीको । त्रिजग टीको । सुखदाता ॥  
ये मंत्र करारी । महिमा भारी । लहे नरनारी । सुखसाता ॥  
सरजीवन बेली । दे धन टेली । भव भव केली । यह सारं ॥ त्रि ॥ १३ ॥  
पद्मासन वाली । रंग निहाली । आरत टाली । ध्यान धरे ॥  
तिलोक पयंपे । भावसु जपे । ऋद्धि सिद्धि मप्पे । जेह घरे ॥  
यह छंद त्रिभंगी । गावे उमंगी । भव भव संगी । जय करं ॥ त्रि ॥ १४ ॥

॥ श्री पंच प्रमेष्ठी स्तुति ॥

॥ नारच छंद ॥

तिलोक संत श्रेष्ठिके । नमामि परमेशिके ॥ भजे भजे उदंगलं ।



भवामि सदा मंगलं ॥ १ ॥ सर्वांग अंग सुन्दरं । मारंत मार दुर्धरं ॥  
 सहस्र अष्ट लंछनं । समस्त शुद्ध स्वच्छनं ॥ २ ॥ तितिष्ठ जे चतुष्टकं ।  
 हृणंत कर्म दुष्टकं ॥ तपश्चर्या से पुष्टकं । धरंत ध्यान सुष्टकं ॥ ३ ॥  
 सुज्ञान पूर्ण धारकं । अज्ञान भर्म वारकं ॥ सुअष्ट प्रतिहारकं ।  
 सुभव्य जीव तारकं ॥ ४ ॥ प्रमाद वाद खण्डितं । अनन्त गुण मण्डितं ॥  
 अशुभ योग दण्डितं । नमामि परम पण्डितं ॥ ५ ॥ पुमानु कौटीभास्करं ।  
 भवाब्दी तारकं परं ॥ विकार दृष्टि मौचनं । नमामि शांति लांचनं ॥ ६ ॥  
 सर्वत्र पाप खण्डनं । सुजैन धर्म मण्डनं ॥ अनन्तमुख दायकं ।  
 नमामि संघ नायकं ॥ ७ ॥ विशिष्ट गुण अष्टकं । समस्त शत्रु नष्टकं ॥  
 अरूप रूप रासकं । सदैव स्थिर वासकं ॥ ८ ॥ अनन्त सुख सुस्थितं ।  
 रहंत सद्म निर्मितं ॥ भवौष सर्व धारकं । नमामि निर्विकार कं ॥ ९ ॥  
 छर्त्तास गुण शोभितं । कषाय चट अशोभितं ॥ मु सम्पदाष्ट माचकं ।  
 नमामि नित्य वाचकं ॥ १० ॥ प्रमाण नव संश्रुतं । पच्चीस गुण संश्रुतं ॥  
 सुज्ञान अन्य दायणं । नमामि उपाध्यायणं ॥ ११ ॥ तजत जगत् जालकं ।  
 पर प्राण रक्षपालकं ॥ वजंत पाप कारणं । गजंत धर्म धारणं ॥ १२ ॥  
 तजंत काम क्रोधकं । लजंत सो विरोधकं ॥ वातराग आण शोधकं ।  
 नमामि संत जोधकं ॥ १३ ॥ अज्ञानता प्रहारणं । अखील सुख कारणं ॥  
 हृणंत मोह फेणतं । नमामि जिनवेणतं ॥ १४ ॥ मिथ्यान्धकार भंजनं ।  
 ददाति ज्ञान अंजनं ॥ प्रमाद दुःख चूरणं । नमामि सत् गुरुणं ॥ १५ ॥  
 तिलोकरूपि संस्तवे । शरणं रुदा भवोभवे ॥ कृपाणिव मया करी

मदैव घो हिरी सिरी ॥ १६ ॥

दोहाः—जय जय श्री प्रमेष्टीको । जय जय श्री जिनवेषण ॥  
जय जय श्री गुरु की रहो । दिया सुमार्ग जैन ॥ १७ ॥

## ॥ श्री परमेष्टी गुण ॥

### ॥ त्रिभुंगी-छंद ॥

श्रीनवकारं । जग जयकारं । शास्त्र सारं । है श्रेष्ठं ॥  
जपो नित्य नरनारी । शुद्ध ध्यान धारी । मंत्र श्रेयकारी । प्रमेष्टी ॥  
त्रीकरण शुद्ध ध्यावे । पाप पलावे । चिन्तित थावे । देसारं ॥  
अहो भव्य हितं । एकण चितं । समरोनित्यं । नवकारं ॥ १ ॥  
श्री अरिहंता । जगत् महंता । इन्द्र नमंता । चरणारी ॥  
उत्तम गुण बारे । पावे ज्यांरे । दोष अठारे । दीये टारी ॥  
महेश्वरं विसु लक्षण । रवी तेज तिक्षण । वरे तत्क्षण । शिवद्वारं ॥ अहो ॥ २ ॥  
हुये अविकारी । कर्म-रिपु मारी । त्रिदुःख टारी । सिद्ध सिरी ॥  
अलस अरूपं । विध के भूपं । सुख अनूपं । ज्ञान हिरी ॥  
अष्ट गुणधारी । एकनीस अतिसारी । जक्त मे जहारी । जप सारं ॥  
अहो ॥ ३ ॥ गण नायक ज्ञाता । समाहित दाता । सूर्य पद पाता ।  
गुण गेहरा ॥ गुण छतीसं । तज रागरीसं । चउ संघ ईसं । दिस चेहग ॥  
बडे विचक्षण । दे शुद्ध शिक्षण । पट काय रक्षण । आचारं ॥ अ ॥ ४ ॥  
ज्ञानमें पूरा । चरचा में मूग । पापंडी दूरा । मगजावे ॥

श्रेय इत्याग । उपांग वाग । पटमत सारा । गुणावे ॥ श्री उवञ्जायं ।  
 संशय मिटायं । जिन मग टायं । नार नार ॥ अ ॥ ४ ॥  
 संयम धारी । ममता वागी । करणी करारी । करता है ॥ प्रणामं समं ।  
 आत्म दमं । परीपह स्वमं । चरता है ॥ पटकाय पाले । कर्म को जाले ।  
 शुद्ध मग हाले । अणगारं ॥ अ. ॥ ६ ॥ यह परम इष्टं । सर्वे में श्रेष्ठं ।  
 मुख उरुष्टं । देता है ॥ सिद्ध अही कुंजर । दय रण सागर ।  
 बन्ध जलोदर । हरता है ॥ दुरित पलावे । रोग शोग जावे ।  
 सब सुख पावे । जग मक्षारं ॥ अ. ॥ ७ ॥ समरते अष्टक. ॥  
 विश्वके कष्टक । छितमें नष्टक । होजावे ॥ शत्रु विनाशे । मित्र उल्लासे ।  
 मिल भक्त आशे । पूरावे ॥ कहे अमोल अणगारं । नित्य नमस्कारं ।  
 देवो पद सारं । दातारं ॥ अहो ॥ ८ ॥

॥ श्री अरिहंत स्तुति ॥

॥ मोतीदास छंद ॥

सदा जगन्नायक सहायक हंस, मुक्तायक वायक लायक वंस ॥  
 नुश्रेष्ठ विशेष सुज्येष्ठ कहंत, अहो अरिहंत करो सुख संत ॥ १ ॥  
 सुतात सुमात सुभात सुजात । सुगात सुधात सुपात सुआत ॥  
 लंछन सुअष्ट सहस्र कहंत ॥ अहो ॥ २ ॥ विशाल सुभाल सुवाल अवाल,  
 दयाल मयाल अजाल कृपाल ॥ सुमाल सुलाल भविक इच्छंत ॥  
 अहो ॥ ३ ॥ अखंड अडंड अचंड अतंड, अगंड अवंड असंड सुसंड ॥  
 अफंड णछंड भये गुणवंत ॥ अहो ॥ ४ ॥ महावीर गंभीर ध्यान सुस्थिर ॥

अर्चर विर्चर अर्गर सुगीर ॥ अपीर सुपीर सुबोध कहंत ॥  
 ॥ अहो ॥ ५ ॥ अरीश विरीश शत्रुदः परिस, जगोश मगीश गुणीश वरीश ॥  
 अखेह अछेह अमेह रहंत ॥ अहो ॥ ६ ॥ उत्थापक पाप तर्थाकर आप ॥  
 जपंत जिनंद वधन प्रताप ॥ अनंत गुणातम श्री भगवंत ॥ अहो ॥ ७ ॥  
 अनेह विनेह अगेह सुगेह, अमेह विमेह अदेह विदेह ॥ अलेप  
 मुलेप सदा दरमंत ॥ अहो ॥ ८ ॥ नकर्म नभर्म नगर्म उछाह,  
 अक्रोध अमान अमाय अदाह ॥ अराग असोग अभोग तरंत ॥  
 अहो ॥ ९ ॥ सुज्ञान अराध समाधि प्रणाम, विहार फरंत भवी हित काम ॥  
 भजंत मुरासु म्बामि महंत ॥ अहो ॥ १० ॥ कहंत सदा उपदेश रसाला  
 हठंत मिथ्यातप वंधन जाऊ ॥ अराधक होय तिरंत अनंत ॥  
 अहो ॥ ११ ॥ रटंत कटंत दुरीत समस्त, लहंत सुखामृत बांछित वस्त ॥  
 उद्धारक वृद्ध सहित हितयंत ॥ अहो ॥ १२ ॥ त्रिजोग निवार वसे शिव  
 लोक, चरणांबुज धोक, दे रिल तिलोक ॥ विलोक सुदेव जपो जग कंत ॥  
 अहो ॥ १३ ॥ इति ॥

## ॥ श्री सिद्धाष्टक स्तुति ॥

॥ नाराय चन्द्र ॥

प्रसिद्ध सिद्ध शिव कंत, संत श्रेष्ठ देव हो ॥ श्टक दी मकल पाप,  
 न्येध नीरलेव हो ॥ कलंक डंक धंक अंक, रंच त्वं नडंबर ॥  
 कृपा करो दयानिधी, ऋद्धि वृद्धी सिद्धी करे ॥ १ ॥ टेक ॥

अरूप रूप स्व अनूप, भूपधू. अखंड हो ॥ अफंड भंड डंड गंड,  
छंडके प्रचंड हो ॥ अनंत ज्ञानरूप तोय, पाप मेळ संहरं ॥ कृपा ॥ २ ॥  
प्रमाद क्रोध मान माय, लोभ लेश सो नहीं ॥ अनंत काल स्थित है,  
अनंत सूख रासही ॥ अष्ट महा गुण मूल, त्वं सदा मुसंवरं ॥ कृपा  
॥ ३ ॥ विकार स्वार दूर टाल, राग द्वेष सहन्या ॥ अगाध जो भवोदधि  
सो धर्मपोतथी तन्या ॥ प्रत्येक एकमेक आप, व्याप हो गुणागरं  
॥ कृपा ॥ ४ ॥ अलेख रेख रूप नाहो, पापफंद बंध सो ॥  
आहार भार हास्य वास, नाश काम धंधसो ॥ अभंग ज्ञान संग चंग,  
गुप्त ना उजागरं ॥ कृपा ॥ ५ ॥ अलोक लोक द्रव्य क्षेत्र,  
काल भाव जाण हो ॥ त्रिलोकनाथ त्रात भ्रात, मंद्र चंद्र भाण हो ॥  
विनाश किया रोग सोग, भोग भाव भंडगुरं ॥ कृपा ॥ ६ ॥  
जपंत जाप आग नाग, तिह चोर सो हटे ॥ कटंत बंध द्रव्य भाव,  
रोग दुःख जे मिटे ॥ विषय कषाय लय जाय, आय मूख सागरं ॥  
कृपा ॥ ७ ॥ तिलोकारिख हस्त जोड, करत दित्य वंदना ॥  
निरोग बोध लभ चहाय, कर्म की निकंदना ॥ नहीं जगत्माही ओर,  
आपमो विश्वंजरं ॥ कृपा ॥ ८ ॥ नित्यमेव ण सिद्धाष्टकं, पठंति जे मनोहरं ॥  
विज्ञान मुक्ति सुख द्रव्य, भाव होत नागरं ॥ नान्यत्र देवलोक मांही,  
मिद्धस्थान उपरं ॥ कृपा ॥ ९ ॥

दोहाः—अजर अमर अविकार हो, सिद्ध निरंजन देव ॥  
किंकर पर करुणा करो, दीजो अविचल सेव ॥ १० ॥ इति ॥

# ॥ श्री आचार्य स्तुति ॥

## ॥ मरहटा छंद ॥

जे ज्ञान महंता, समकितवंता, चारितर तपशर ॥ उरकृष्टि करणी,  
भवजल तरणी, पंचम वीर्य आचारा॥स्वयं पाले पलावे, पाप हटावे.  
उपदेशे नर नारा॥ गणिवर पद्म श्रीजे, नित्य नमीजे, कीजे सफल जनार॥१॥  
॥ टेक ॥ सब हिंसा टाले, दया सो पाले, निरवघ बोले विचार ॥  
दत्त व्रत ब्रह्मधारी, परिग्रह टारी, पंच जाम शुद्ध धार ॥  
मुरत चक्खु नासा, रसना फासा, इंद्राय जांतन हार ॥ गणि. ॥२॥  
पशु पंडग नारी, थानक टारी, नारिकेया परिहार॥अंग निरखवा वारे,  
आसन टारे, सुणें न शब्द विकार॥कोडा न संगारे, सरस रस टारे,  
करे नहीं अधिको आहार ॥ गणि. ॥ ३ ॥ अंगशोभा टाले,  
वाड ण पाले, क्रोध न करे लगार॥अभिमान तजंता, कपट वरजंता,  
भमतादी सब मार। कापाय एह चारी, महा दुःखकारी, भरमावे संसार॥  
गणि ॥ ४ ॥ कर्मनका फंदा, दूर निवंदा, चाले इया विहार ॥  
निरवघ मुस वाणी, ले शुद्ध अन्नपाणी, दोष च्यालिस टार ॥  
जयणा करि लेवे, विधिसे परटेवे, समिती ण मुखकार ॥गणि. ॥५॥  
मन वचन काया, गुप्ति त्रिहुं डायी, गुण छत्तीस उदार ॥  
शुद्धकिरिया धारी, ज्ञान भंडारी, करता पर उपकार ॥उपदेश सुनावे,  
भर्म उडावे, नारे भवि नर नार ॥ गणि. ॥ ६ ॥ वर रूप दीर्पता.

महाबलवंता, वाणी अमृत धार ॥ अक्षर शुद्ध बोले, सानू नय खोले,  
 डोले नहीं लगारे ॥ विद्या निधाना, युगप्रधाना, गुणगण रत्नाकार-॥  
 गणि. ॥ ७ ॥ कुपक्ष नहीं ताणे, सब मत जाणें, अन्य मतको परिहार ॥  
 शतिल शशि जीपे, रवि जिम दीपे, साथे बहु अनगार ॥  
 पाखंड हटावे, जैन दिपावे, पाले संजम भार ॥ गणि. ॥ ८ ॥  
 आचार्य नाणी, गुणनिधि स्वाणी, आचारज सुखकारी ॥ समरण सुखकारी,  
 महिमा भारी, अरि करी भय परिहार ॥ दुःख जावे दूर, संकट चूर,  
 पूरण रहे भंडार ॥ गणि. ॥ ९ ॥ आचार्य स्वामि, अंतर्जामी,  
 सिद्ध पदके दातार ॥ गणिवर गुण गावे, पार न पावे,  
 रसना रचे हजार ॥ अल्प गुण गाया, मन समझाया. तिलोक करे  
 नमस्कार ॥ गणि० ॥ १० ॥ संवत उगर्णासे, वर्ष चोतीसे,  
 वैशाख पूनम शशि वार ॥ जो अपशे भावे, सोही सुख पावे,  
 छंद भरहठा धार ॥ प्राते उठ वंदे, दुरित निकंदे, रिद्ध सिद्ध जय  
 जयकार ॥ गणि० ॥ ११ ॥ इति ॥

## ॥ श्री उपाध्याय स्तुति ॥

॥ हाटकी छन्द ॥

संसार सागर, दुःख आगर, जाणे नागर, धीर ए  
 तत्काल त्यागे, दूर भागे, शूर सागे, वीर ए ॥ मुनिराज पासे

ग्रहे दीक्षा, ज्ञान शिक्षा, आप ए ॥ चउथें पद उवज्झाय सुखकर,  
 क्रीजे नित्य प्रति जाप ए ॥ १ ॥ टेक ॥ आचारंग चंग,  
 अंग सुयगड, टाणायंग सुखकार ए ॥ चउथो समवायांग नीको,  
 भगवद् ज्ञाता सार ए ॥ उपासक अंतगड, अंग अष्टम, अनुत्तरो-  
 ववाद् थाप ए ॥ चउथे. ॥ २ ॥ प्रश्न व्याकरण, भण्या पूर्ण,  
 अंग विपाक, रसाल ए ॥ गुरुदेव पासे, अर्थ धान्या, चउदें दूषण  
 टाल ए ॥ ग्यारा अंग, संगो-पांग, शिख्या अति, चित्त चाप  
 ए ॥ चउ. ॥ ३ ॥ उत्पात अर्मी, वीर्य तृतीय, अस्ति ज्ञान सत्त  
 जाणीए ॥ आतम प्रवाद, अरु कर्म पूरव, प्रत्याख्यान वस्त्राणीए ॥  
 विद्या अचंच, प्रवाद पूरव, धारंत तोहि न धाप ए ॥ चउ. ॥ ४ ॥  
 प्राण क्रिया, विशाल पूरव, लोकेविंदु, मार ए ॥ चतुर्दश पूरव,  
 अंग ग्यारा, पाठ अर्थ, सुधार ए ॥ अभिमान तज कहे, वेण चारु,  
 नहिं करत कूडी थाप ए ॥ चउ. ॥ ५ ॥ भविकजन जो, प्रश्न  
 पूछे, नव पदारथ, भाव ए ॥ सूक्ष्म वादर, द्रव्य पटनो, पूछे  
 कोई, प्रस्ताव ए ॥ तव देत उत्तर, शोध सुत्तर, दे जिनागम,  
 छाप ए ॥ चऊ. ॥ ६ ॥ ज्ञानदाता, धर्मराता, बोले निरवच,  
 वेण ए ॥ मिट्यात खंडण, जैन मंडण, पाले जिनवर, केण ए ॥  
 गणिवश्ने, जोग सोहे, नामकर्म, आताप ए ॥ चउ. ॥ ७ ॥  
 महाव्रत पाले, दोष टाले, चाले इरजा, शोध ए ॥ कर्मरूपी  
 शत्रुघातक, परम शूरा, जोध ए ॥ मन वचन फाया, करण तीनुं,



करत नहीं, सो पाप ए ॥ चउ. ॥ ८ ॥ उपाध्याय भाक्ति, करत  
 जुक्ति, ज्ञानागर, जीवत ए ॥ मिथ्यात जावे, बोध आवे, धावे  
 शिवपुर, कंत ए ॥ जैनमारग, तरण तारण, अवर सब. कलाप  
 ए ॥ चउ. ९ ॥ जिन नहीं, जिनराज सरस्वा, वेण सत, सुखकार  
 ए ॥ देश जिनपद, मांहि विचरे, करता पर, उपकार ए ॥  
 मिथ्यात्व अंधा, कर्म फंदा, ज्ञान अस्सि कर, काप ए ॥ चउ. ॥  
 १० ॥ भवप्राणी तारे, संशय टार, यहू सूत्र, विस्तार ए ॥ उत्स-  
 राध्ययन, इगियारमां से, कसो वर्णव, जहार ए ॥ तिलोक रिस्,  
 कर जोडि बंदे, सदा पुण्य प्रताप ए ॥ चउ. ॥ ११ ॥ इति ॥

## ॥ श्री साधु स्तुति ॥

॥ कामनी मोहनानी छन्द ॥

साधु निर्मयने वंदना कीजीए, मानवको भव सफल करीजीए ॥  
 धन्य जे संत गुणवंत सोभागिया, भोग कियाकसा जाणके त्यागीया  
 ॥-१-॥ पंच महाव्रत समकित पालता, चार कषाय दावानल  
 टालता ॥ भाव सचे मुनि वंदूं में नित ए, कर्ण सचे जोग सचे  
 सुकित्तए ॥ २ ॥ धन्य जे क्षमा वैरागमें राचिया, द्रव्य छ नव  
 पदारथ जाचिया ॥ मन वचन काया सम धारता, ज्ञान दर्शन  
 चरण शुद्ध सारता ॥ ३ ॥ समभावे करी वेदना स्वमतः. मरण

आया थकी जे करे समता ॥ गुण सत्तावीस संयम जे धरे, राग  
अने द्वेष जे किंचित नहीं धरे ॥ ४ ॥ तीन ही शस्य सो मूल  
निकंदिया, मोहनी कर्मसूं ते नहीं कांदिया ॥ नहीं करे विकथा  
धर्म सुध्यावता, शुरू ध्यान धर कर्म स्वपावता ॥ ५ ॥ दया  
छकायकी पालता जे मुनि, क्रिया भेद मद नहीं करे महागुणी ॥  
नव वाड मुनिधर्म पाले अखंड ए, सकल मिथ्यात्वको छंड्यो  
अफंड ए ॥ ६ ॥ बावीस परिसह जीतिया ते सही, बावान  
प्राणरक्षक विचरे मही ॥ बावन आनाचीरण टालता, चौरासी  
उपमायुक्त वे चालता ॥ ७ ॥ एक एक चऊथादि पष्ठमासी करे,  
एकावली रतनावली आदरे ॥ गुण रतन संबच्छर धारता,  
प्रतिमादिक संलेखना जहारता ॥ ८ ॥ तप ऊणोदरी छे अति  
मोटको, भिक्षाचरी रमत्याग नहीं छोटको ॥ कायकिलेस ने  
पडिसंलीनता, पष्ठ तप धारके तन करे क्षीणता  
॥ ९ ॥ प्रायश्चित्त विनय वैयावच जे करे, सज्झाय  
ध्यान काउसग आदरे ॥ प्रच्छन्न पठ नप साथे अणगार ए.  
टाले सही जिके कर्मको स्वार ए ॥ १० ॥ चंद्र ज्युं सोमदृष्टी  
करी दीपता, तपतेजे रविकिरणनें जीपता ॥ सागर जेम गंभीर  
कहीजीए, कुंजर जेम धीरजता लीजीए ॥ ११ ॥ लडिय पाया  
भलां प्रगट तपस्या फली, खेलासही जलासही प्रसिद्ध प्रगटी मली ॥  
वेणोसही केइ भामोसही पतिया, मन्वोसही कोटबुद्धि केइ

मत्तिया ॥ १२ ॥ बीजबुद्धी चली पदानुसरिया, एकेक मुनिवर  
 वैक्रय धारिया ॥ चरण विज्जाहरा मुनिगजिया, ऋजु विपुलमति  
 संशय भांजिया ॥ १३ ॥ एकेक मति श्रुति अवर्धा घणी, मनःपर्यव  
 केवल शोभा घणी ॥ केवली दौय कोडी मुखयार ए, नवकोडी  
 उत्कृष्ट विचार ए, ॥ १४ ॥ जघन्य दौय सहस्र कोडी जती,  
 सहस्र प्रत्येक उत्कृष्ट पद संयती ॥ आज्ञा जिन्दकी पालता जे  
 सदा ॥ जगतमें सकल छोटे आपदां ॥ १५ ॥ दुरित टले मुनि मोवसू  
 जपता, तम दलित होवे जिम रवि तपता ॥ कर्म शत्रु जीके करत  
 निन्दना, रिख तिलोकजी करे तंस बंदना ॥ १६ ॥ संवत उग-  
 णीसे तसि मझारए; ज्येष्ठ आदि छट मूरज धारए ॥ कामनी  
 मोहना छंदमें जाणीए, मुखवेली जले पुंकर मानीए ॥ १७ ॥  
 कलश ॥ इम ऋद्धि वृद्धि समृद्धि कारण, जपो मुनिवर भावसु ॥  
 धर्मदेव महन्त प्रणमु थुप्या सुगुरु पसावसू ॥ एम जाणी सेवो प्राणी  
 सुसाधु मन खंत ए ॥ ते लहे शिवपद रूप निश्चय, निर्भय शिवमुख  
 संत ए ॥ १ ॥ इति ॥

## ॥ श्री चित्तामणी पार्श्वनाथ स्तोत्रम् ॥

किंकर्षणमयं मुधारसमयं किं चन्द्रोर्चिमयं । किं लावण्यमयं महा  
 माणिमयं कारुण्य केलिमयं ॥ विश्रानन्दमयं महोदयमयं शोभामयं

चिन्मये । शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपते भूर्धाद्भवालम्बनम् ॥ १ ॥  
 पातालं कलयन् धरां धवलयन्नाकाश मापूग्यन् । दिक्चक्रं क्रमयन्  
 सुरासुर नरश्रेणिं च विस्मापयन् ॥ ब्रह्माण्डं सुखयन् जलनिजलधेः  
 फेनच्छलालोलयन् । श्रीचिन्तामणि पार्श्व संभवयशो हंसश्चिरं  
 राजते ॥ २ ॥ पुण्यानां विपणिस्तभोदिनमणिः कामेभ कुम्भेशृणि ।  
 मोक्षेनिस्सराणिः सुरन्द्रेकरिणी ज्योतिः प्रकाशाराणिः ॥ दाने देव  
 मणिर्नितोत्तम जनश्रेणिः कृपासारिणी । विश्वानन्द सुधा घृणर्भव-  
 भिद्रे श्रीपार्श्वचिन्तामणिः ॥ ३ ॥ श्रीचिन्तामणिपार्श्व विश्वजनता  
 सञ्जीवनस्त्वं मया । दृष्ट स्तात ततः श्रियः समभवन्ना शक्रमाच-  
 क्रिणः ॥ मुक्तिः क्रीडति हस्तयोर्वहुविधं सिद्धं मनोवाञ्छितं ।  
 दुर्देवं दुरितंच दुर्दिन भयं कष्टं प्रणष्टं मम ॥ ४ ॥ यस्य प्रौढराम  
 प्रताप तपनः प्रौढमधामा जगज्जङ्घालः । कलिकाल कैलिदलनो  
 मोहान्ध विध्वंसकः ॥ नित्योद्योतपदं समस्त कमला कैलिगृहं  
 राजते । स श्री पार्श्वजिनो जनहित कृते चिन्तामणिः पातु मम्  
 ॥ ५ ॥ विश्व व्यापितमो हिनस्ति तरणिवालोपि कल्पाङ्कुगे ।  
 दारिद्र्याणि गजवलीं हारिं शिशुः काष्ठानि बहेः कणः ॥ पीयूषम्य  
 ल्वोपि रोग निवहं यद् तथा ते विभो । मूर्तिः स्मृतिमती सर्ती  
 त्रिजगती कष्टानि हर्तुं क्षमा ॥ ६ ॥ श्रीचिन्तामणि मंत्र मोक्षति-  
 युतं ह्रीं कार साराधितं । श्रीमहं नमिऊण पास कालितं त्रैलोक्य  
 वश्यावहम् ॥ द्वेषा भूत विषापहं विषहरं धेयः प्रभावाश्रयं ।

सोऽस्मासं वसहाङ्कितं जिनपुलिङ्गा नन्ददं देहिनाम् ॥ ७ ॥ ॐ श्रीं  
 श्री कारवरं नमोक्षर परं ध्यायंतिये योगिनो । हृत्पद्मे विनिवेश्य  
 पार्श्वमधिपं चिन्तामणि संज्ञकम् ॥ भाले वाम भुजेच नाभिकर्या  
 भूयो भुजे दक्षिणे । पश्चादृष्टदलेषु ते शिवपदं द्वित्रैर्भैरवैरान्त्यहो ॥  
 ८ ॥ नो रोगा नैव शोका न कलह कलना नारिमारं प्रचारा ।  
 नैवाधिनो समाधिर्नच दरदुरिते दुष्ट दारद्रतानो ॥ नो शाकिन्यो  
 ग्रहानो नहरिकरि गणा व्याल वेतालजाला । जायन्ते पार्श्वचिन्ता-  
 मणि मतिवशतः प्राणिनां भक्तिभाजनम् ॥ ९ ॥ गीर्वाण द्रुमधेनु  
 कुम्भ मणय स्नस्याङ्गणे रङ्गिणो । देवा दानव मानवाः मविनयं  
 तस्मै हित ध्यायिनः ॥ लक्ष्मी तस्यवशा यशेव गुणिनां ब्रह्माण्ड  
 संस्थायिनी । श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ मानिशं संस्तातिया ध्यायने  
 ॥ १० ॥ इतिजिनपति पार्श्व पार्श्वस्ययक्षः । प्रदलित दुरितीघः  
 प्रीणित प्राणी सार्धः । त्रिभुवन जनवाञ्छादान चिन्तामणिकः ।  
 शिवपद तरुवाजं शोधिवाजं ददातु ॥ ११ ॥ इति ॥



## शान्तिप्रकाश प्रारम्भ

॥ प्रार्थना अह् ॥ दोहा

प्रेम सहित यन्देश प्रथम, जिन पद कमल अनूप ।  
नाके सुमरन अधम नर, होवन शान्त स्वरूप ॥ १ ॥  
तुम शरण आयो प्रभू, राखी लेओ निज टेक ।  
निर्विकल्प मम सिद्धजी; देवो विमल विवेक ॥ २ ॥  
करू यन्दना भाव चुन; त्रिविध जोग थिर धार ।  
रतन रतन सम देव मुझ, ज्ञान जवाहर सार ॥ ३ ॥  
उपाध्याय अध्ययन श्रुति; निसदिन करत अभ्यास ।  
दीन बंधु मुज दीजीये, सम दम ज्ञान थिलास ॥ ४ ॥  
सो साधु वाधा हरा, कर्म शत्रु रणजीत ।  
निपुणजो हरी ज्यों लख्यो, आनम रतन पुनीत ॥५॥  
अधिक प्रीय नव रसन में, है रस शान्ति विद्योप ।  
स्वाइं भाव नियेदसें, मेरो सकल क्लेश ॥ ६ ॥  
चीकलमती अभिलाश अति, कपट क्रिया गुण चोर ।  
में चाहत कष्ट शान्त रस, तुम सें करौं निहार ॥ ७ ॥  
काप जांचो जायक, तुम सम नहिं दानार ।  
करुणा निर्धी किरपा करी; दीज शान्ति विचार ॥८॥

मैं गुलाम हूँ रावरो, मेरो विगरत काज ।  
 ताही सुधोर बनि रहै; मेरी तेरी लाज ॥ ९ ॥  
 शान्ति छथी निरखत रहूं, जांचू नहीं कछु और ।  
 अरजी हुकुम चढायदो; परयो रहू तुम पौर ॥ १० ॥  
 जिहीं गुणते खुश होहुं तुम, सो गुण नहीं लबलेश ।  
 तुम चरणन आश्रित रहूं; सो बुद्धि देहु जिनेश ॥ ११ ॥  
 तलपत दुखिया मैं अति, पलक परत नहीं चैन ।  
 अब सुदृष्टि करि निरखिये, ढीले रहे बनै न ॥ १२ ॥  
 यह सम्बन्ध भलो बन्यो, हम तुमसो सर्वज्ञ ।  
 त्यागै ताहि न संग रखे, पिता पुत्र लखि अज ॥ १३ ॥  
 मेदहु कठिन क्लेश तुम, परमात्म परमेश ।  
 दीन जानिके बकसिये, दिन दिन ज्ञान विशेष ॥ १४ ॥  
 कृपा करौ निर्वुद्धि पै, लखूं ज्यं अनुभव रीति ।  
 अशुभ और शुभ देखिकै, करूं न कयहुं प्रीति ॥ १५ ॥  
 सब प्रकार घनवन्त हौ, सुनौ गरीब निवाज ।  
 आरत रुद्र कुध्यान ते, बकसि २ महाराज ॥ १६ ॥  
 धर्म शुद्ध ध्यावत रहूं, दोष ध्यान सुखकार ।  
 या जग ममता उदधी तै, दीजे पार उत्तार ॥ १७ ॥  
 करुणा करिकै मेटिये, विषय वासना रोग  
 मैं कुपथी वेदन प्रथल, लख मन जोग अजोग ॥ १८ ॥

मैं गरजी अरजी करूं, सुनिहौ जग-प्रतिपाल ।  
 चाह सनाये दासकूं, यह दुःख दीजे टाल ॥ १९ ॥  
 प्रभु तुम सनमुख होरहुं, जग को देऊं पूट ।  
 कृपादृष्टि ऐसी करो, ज्युं भय जाये छूट ॥ २० ॥  
 मैंने जे कृकरम किये, दोग्वत हूं सब तो हिं ।  
 महर करौ ज्युं दीन पै, फेर न दुःख दे मोहि ॥ २१ ॥  
 विपति रही मो घेरकै, सुनि न अजहुं पुकार ।  
 मेरी विरियां नाथ तुम, कहां लगाई बार ॥ २२ ॥  
 ऐसी विरियां में कहां, टरि गये दीन दयाल ।  
 बिना कथां कैसे रहूं अबनौ करो प्रतिपाल ॥ २३ ॥  
 जां कह्याउं और पै, मिटै न मम उरहार ।  
 मेरी नेरे सामने, मिटसी मनकी रार ॥ २४ ॥  
 दुष्ट अनेक उधारीकै, थकि रहे क्या दयाल ।  
 धौरै २ नारिये, मेरा भो लखि हाल ॥ २५ ॥

॥ अथ राग निवारण अंग ॥

अरे जीव भय बन विषं, नेरा कवन सहाय ।  
 जिन के कारण पधि रखा, नैंतौ नेरे नाथ ॥ २६ ॥



संसारी को देखिले, सुखी न एक लगार ।  
 अब तौ पीछा छोड़िदे, मति धर सिर पै भार ॥ २७ ॥  
 झूठे जगके कारणे, तू मति कर्म बंधाय ।  
 तू तौ रीनाही रहै, धन पैलाही थाय ॥ २८ ॥  
 तन धन संपति पायके, मगन न हो मन सांघ ।  
 कैसे सुखिया होयगा, सोवै लाय लगाय ॥ २९ ॥  
 श्राठ देव भूलै मनी, ए पुद्गल परयाय ।  
 देखत देवन थांहरै, जासी थिर न रहाय ॥ ३० ॥  
 लूटेंगे जानादि धन, श्रग सम ये संसार ।  
 मीठे घचन उचारिकै, मो फांसी गल डार ॥ ३१ ॥  
 किसौ भूत तोकां लग्यो, करै न तनक विचार ।  
 ना मानै सौ परगिले; मतलय को संसार ॥ ३२ ॥  
 काया उपर थांहरै; सब सूं अधिकी प्रीत ।  
 यातौ पहले सयन में; देगी दगो निचीन ॥ ३३ ॥  
 विषय दुखन को सुख गिनै; कहुं कहां लागि भूल ।  
 आंख छतां अंध हुचा; जाणपणा में धूल ॥ ३४ ॥  
 नित प्रति दीग्यतही रहै; उदै अस्त गति भान ।  
 अजहुं न ज्ञान भयो कहुं; तृतां बडो अपान ॥ ३५ ॥  
 किस के कहे निचिंत तु; सिर पर किरै जु काल ।  
 बाधे है तो थांधलै; पानी पहिलां पाल ॥ ३६ ॥

आया सो सयही गया; अवतारादि विशेष ।  
 नृंभी यौही जायगा; इण में मनि न मेप ॥ ३७ ॥  
 ये अवसर फिर ना मिलै; अपनो मनलख सार ।  
 चुकते नाम चुकायदे; अब मनि राख उधार ॥ ३८ ॥  
 कैसे गाफिल हो रहा; निबडा आनकरार;  
 निपजी ग्वती देय क्युं; बाटी सट्ट गंधार ॥ ३९ ॥  
 धर्म विहार कियो नहीं; कीनो विषय विहार ।  
 गांठ ग्वाय रीते चले; आकं जग हटवार ॥ ४० ॥  
 काज करत पर घरन के; अपना काज विगार ।  
 सीत निवारै जगन का; अपनी झंपरी बार ॥ ४१ ॥  
 नहीं विचार तैने किया; करना था क्या काज ।  
 उदै होयगा कर्म फल; तब उपजंगी लाज ॥ ४२ ॥  
 झूटे संसारीन की, छूटगी जब लाज ।  
 इनसों अलगा होयगा, तब सुधरेगा काज ॥ ४३ ॥  
 अपनी पूंजी सुं करी, निश्चल कार विहार ।  
 बांध्या सौही भोगलं, मति कर और उधार ॥ ४४ ॥  
 नया कर्म ऋण काढिके; करसी कार विहार ।  
 देणां पडसी पार का, किम होसी छुटकार ॥ ४५ ॥  
 विषय भोग किपाक सम, लखि दुःख फल परिणाम ।  
 जब धिरक्त नृं होयगा, तब सुधरेगा काम ॥ ४६ ॥

परे मन मेरे पथिक तु न जाय यह ठार ।  
 घटमारा पांच जहां, करे साह कूं चोर ॥ ४७ ॥  
 आरंभ विषय कपाय कूं, कीनी बहुत हि धार ।  
 कष्ट कारज सरिया नहीं, उलटा हुवा खुवार ॥ ४८ ॥  
 च्याखूं सजा में सदा, सुनै निपुन चित लाग ।  
 गुरु समझावें कठिन सूं, उपजै तउ न वैराग ॥ ४९ ॥  
 म्वर हुवा जो कुछ हुवा, अथ करनो नहिं जोग ।  
 विना विचान्या तैं किया, नाकाही फल भोग ॥ ५० ॥

## ॥ द्वेष निवारण अंग ॥

बुरा कहे कोउ तो भणी, तो तू भलाजु मान ।  
 बुरा मीठा होय है; सब धनि हैं पकवान ॥ ५१ ॥  
 कटु निक्षण अनि विष भरी; गाली शस्त्र समान ।  
 अशुभ कर्म गुम्मड भियो; यों जिय सुलटी जान ॥ ५२ ॥  
 कटुक वचन को कहदिया; लगेजु दिल में तीर ।  
 सम दृष्टि यूं समझ ले; भोजान्या अनि धीर ॥ ५३ ॥  
 वरी होना तो कबहुं; नहिं कहता कटु यात ।  
 सज्जन दीसै मांहिरा, रुज लागि कटुक खवान ॥ ५४ ॥  
 औगुन सुनिकै आपणा; रेमन सुलटी धार ।  
 मौ गरीब कूं जानिके; लीना थोझ उनार ॥ ५५ ॥

मैं भूल्यो शुभ राह कूं, उसने दर्द बनाय  
 दुरजन जानि पर नहीं, सज्जन सो दरसाय ॥ ५३ ॥  
 अस्म ज्ञान सूरज हुवा; मैं भूल्यो निज जाह ।  
 निंदा रूप मशाल ले; इने दिम्बाह राह ॥ ५७ ॥  
 सुनि निंदक के वचन कूं; चित मति करै उचाट ।  
 यह दुर्गंधित पवन अनि, बहती कूं मन दाट ॥ ५८ ॥  
 कुवचन शर क्या करे सैक, तूं होजा पापाना ।  
 तेरा कछु विगरे नहीं, बाकाही अपमान ॥ ५९ ॥  
 कुवचन गोली के लगे, जो ले मन कूं मार ।  
 आप हि ठंडी होयगी, हो जो शतिलगार ॥ ६० ॥  
 नैने उपरसूं कही, मै तौ समझी ठेट ।  
 सयही ग्वटका मिटगया, एक रह गया पेट ॥ ६१ ॥  
 रे चैनन सुलटी समझ, तेरा सुधर्या काज ।  
 कुवचन घरघर धांहरा, इणने सौंपी आज ॥ ६२ ॥  
 होगी सौही नीसरे, वस्तु भरी जिहि माहिं ।  
 याका गाहक मति धनै, ते रे लायक नहिं ॥ ६३ ॥  
 अपना अवगुण सुण करी, मति माने जिय रोस ।  
 मन में तूं यूं समझलै, मुझको दे आसीस ॥ ६४ ॥  
 क्रोध अग्नि दिल मति लगा, सुन अजथार्थ बोल ।  
 क्षमा रूप जल छिटकिये, नेक न लागै मोल ॥ ६५ ॥

दुरजन चुप होवे नाहीं, तू नो छिन चुप सधि ।  
 तू न विन परिह् अगनि फहुं, आपहि होय समाधि ॥ ६६ ॥  
 तू तृण सम कटु वचन सुनि, क्रोध अग्नि मति दाझ ।  
 उपल नीर सम करहु मन; तय मिली है शिवराज ॥ ६७ ॥  
 आइ गइ करि गालि कूं, क्रोध चंडाल समान ।  
 नेत्र पिछान चंडालनी, पट्टो पकडै आन ॥ ६८ ॥  
 प्रभु सहाय नहिं हौंहिगे, रे जिय सची जान ।  
 क्रोध करी ज्युं होगयो, साधु रजक संमान ॥ ६९ ॥  
 आत्म वस्त्र मला लांबी, इणनं दीना धोय ।  
 कटुक वचन श्रावन करी, निबल जानिके मोय ॥ ७० ॥  
 जौहरि होके मति करे, कुंजमी के संग रार ।  
 रतन धिम्बरसी थांहरा, भाजी सट्टे गंवार ॥ ७१ ॥  
 साला की गाली दई, ए विचार चित्त टारी ।  
 भगनी सम इणकी धिया, इस समझो व्रत धारी ॥ ७२ ॥  
 कृतघ्नी बननो नहीं, दई गार इण मोय ।  
 इस आत्म सीतल करी, मम उधार तय होय ॥ ७३ ॥  
 गारी एकही होत है, बोलत होत अनेक ।  
 रे जिय तू बोलै नहीं, नौ बही एककी एक ॥ ७४ ॥  
 अनंत काल पहले प्रभु, देख रखे यह भाय ।  
 परिह् कटु वच श्रावन में, ते किमि टाले जाय ॥ ७५ ॥

## ॥ अथ धैर्य अङ्ग ॥

अय दिह चाहें परम पद, नर धीरज गुणधार ।  
 निंदा स्तुति अरु रिपु प्रिय, एकहि दृष्टि निहार ॥७६॥  
 धीरज धरि भ्रम को नजो, ए पुदगल के ख्याल ।  
 पर परछांही पर हरी, तूंतो चेतन लाल ॥ ७७ ॥  
 चंचलना कूं छांडीदे, धीरज की कर हाट ।  
 कर बिहार गुन माल को, ज्यूं होवे बहु ठाट ॥ ७८ ॥  
 निज गुन में जिय टहरि तूं, पर गुन पद मत धार ।  
 पर रमणी सूं राचिकर, मत कहलावे जार ॥ ७९ ॥  
 तब रजनी नासै नहीं, दीपक की कहि यात ।  
 पूरण ज्ञान उद्योग बिन, हृद भरम नहीं जात ॥ ८० ॥  
 यथा लाभ संतोष करि, कष्टन चहै दिल बीच ।  
 याविध सुख अनि अनुभव, तो न फसै दुख कीच ॥८१॥  
 मेहि जानत दुख विकल पन, अथवा सुख सरूप ।  
 गिनै दुहं सम धीर धरि, तौ न परै भवकूप ॥ ८२ ॥  
 अपन २ गुनन में, धिरहै सघही बस्त ॥  
 पग धिर करले अपन कूं, नो सुख लहै समस्त ॥८३॥  
 दुःख सुख दोनुं फिरत है, धूप छांह ज्यों मिन ।  
 हरप सोक क्यों करत है, धीरज धार नचित्त ॥ ८४

अणहोणी होये नहीं, होणी नाहीं ट्यात ।  
 दीर्घी परसी आगल, जं होली ज्या स्यात ॥ ८५ ॥  
 चाह किये कछु ना मिले, करिके जहां नहां देख ।  
 चाह छोटी धीरज धरहु, पग पग मिले विसेप ॥ ८६ ॥  
 सुनि उलझे मनि रे जिया, करी विचार चुप साध ।  
 यही अमोलक औपधी, मेरे भव दुख व्याध ॥ ८७ ॥  
 रे चैनन संसार लखि, हठ करी नेक विचार ।  
 जैसी दे वैसी मिले, कूबा की गुजार ॥ ८८ ॥  
 चंचलता कूं छोडके, काटि मोह गल फांस ।  
 सम दम यम हठता किये, निज गुण होय प्रकास ॥ ८९ ॥  
 अभिलाषा कूं त्यागिके, मनकूं रखि मजबूत ।  
 जय कबु सूर्जे अगम की, यह सांची करहुन ॥ ९० ॥  
 वो तो यहां ही वस्तु है, जाकी तेरे चहाय ।  
 क्षण इक धीरज धारि लै, सहजेही मिल जाय ॥ ९१ ॥  
 मति करि परगुन मे रमन, ज्युं न लगे गल तोख ।  
 निश्चल रह निज गुणन में, आपहिं हांगी मोख ॥ ९२ ॥  
 निश्चलता सुं होयगा, यह जीव ब्रह्म समान ।  
 तृण ही का घृत होतहे, गाय चरे पय पान ॥ ९३ ॥  
 जो तूं चाहे अमर पद, करि हठना अन्वत्यार ।  
 बाल न थांका होयगा, जीवन ही दिख मार ॥ ९४ ॥

धीरज गुण धारण किये, सबही दुःख कटजाय ॥  
 जैसे ठंडे लोहे सैं, तत्ता लोह कटाय ॥ ९५ ॥  
 जल जिम निर्मल मधुर मृदु, करत तप्त कौ अंत ।  
 इम धीरज गुण ज्यार लखि, कयौं न गहै बुधवंत ॥०.६॥  
 कला घटन अरु बढन है, नहिं ससि मंडल जान ।  
 जनम मरण गति देह की, युं लाखि धीरज ठान ॥ ०.७॥  
 सुख दुख दोनों एकसैं, हैं समझन को फेर ।  
 एक शब्द दो अर्थ ज्युं, लाखि टका को सेर ॥ ९८ ॥  
 सुख दुख दोउ वेदे मनि, वेदे तो सम भाय ।  
 जैसे मकरी जालको, पसरै अरु ग्वाजाय ॥०.९॥  
 समना कूं धारण किये, कयौंन डंट मन लहर ॥  
 घाणी सुणि कलापीकी, स्पांपाहंदा जहर ॥ १०० ॥  
**॥ अनुभव तथा विचार ज्ञान अंग ॥**

कूकस विषय विकार सम, मनि भाखि मुढ गंवार ॥  
 अनुभव रस तु चाखिलैं; गुरु सुख करि निरधार ॥ १०१ ॥  
 पाठ किये नैं एक गुन, अनुभव किये हजार ।  
 नातं मन कूं रोकिकै, कयौंन करै विचार ॥ १०२ ॥  
 किये पाठ अनुभव बिना, मिटै न भोतर पाप ॥  
 बाहिर सीसी धोय कै, करी चहै तूं साफ ॥ १०३ ॥



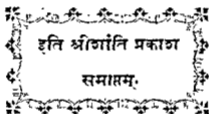
अल्प भार पापान को; जिमि लार्ग जल मांदि ।  
 विमि अनुभव विच कर्म को, यह घंघन रं नान्दि ॥ १०४ ॥  
 मन घचन नन थिरतै हुय, जो मुख्य अनुभव मांदि ॥  
 इन्द्र नरिंद्र फानेंद्र के; ता समान मुख्य नाहो ॥ १०५ ॥  
 अनुभव से प्रभु मिलन है, अनुभव सुखका मूल ।  
 अनुभव चिंतामणी तजी, मनि भटकै कहूँ भूल ॥ १०६ ॥  
 अनि अगाध संसार नद, विषय नीर गंभीर ।  
 अनुभव विन पार न लहै, कोटि करहु नदरि ॥ १०७ ॥  
 जिहि विचार तै पायहै, मनकुं थिर सुख ठौर ।  
 ताकुं अनुभव जानिले, अनुभव नहिं कहूँ ओर ॥ १०८ ॥  
 विना विचारै जानके, तूं जंगलका रोग ।  
 मिथ्या यूही पचन हे, क्योंन करे अय खोज ॥ १०९ ॥  
 मन मतंग घंस करन कूं, ज्ञानांकुंस विन धार ।  
 क्षमा थंभ सौ थांधिकै, लज्या घृणल टार ॥ ११० ॥  
 भ्रमतो मन रवि डादलै, जान मुकरके म्यान ।  
 सिंदू सुभ उपयोग से, कर्म तूल की ज्ञान ॥ १११ ॥  
 सीसां सम संसार है, गुरु कृपा आदित्त ।  
 ज्ञान नेत्र विन किम लखै, आपनपौ भपविन ॥ ११२ ॥  
 विषय वासना करत जो, आवै ज्ञान जगीस ।  
 त्रैसठ काउन समय में, छिन में होय छनीस ॥ ११३ ॥

जो तू चाहे ज्ञान सुख, ना विषयन मन फेर ।  
 और जगह भटके मनी, अपनेही में हेर ॥ १४ ॥  
 ज्ञान रूप दीपक कोन, वचन करम पतंग ।  
 जो रह तो दोनूनमें, झूठो एक प्रसंग ॥ ११५ ॥  
 ज्ञान संचर जिहि सम, रहे न करम समाज  
 और न पंथी बहान्टिके, जहां बसेरा राज ॥ ११६ ॥  
 घर नहिं छूट्यो एकसो, छूट्या कर्म कुदंग ।  
 ज्ञान नणां सन संगथी, देख्यो ठाणायंग ॥ ११७ ॥  
 क्षण इक ज्ञान विचारले, विषय दृष्टि को फेर ।  
 नेरी मेरी त्यागदे, यां होवे सुरझोर ॥ ११८ ॥  
 अष्ट पहरडिग राखिले, ज्ञान स्वरूपी डाल ।  
 मोह अरीके विषय शर, लगे न नाकी भाल ॥ ११९ ॥  
 माया मोह निवारके, विषयन सां मन ग्यांच ।  
 जो सुख चाहे आपणा, रहे ज्ञानके बीच ॥ १२० ॥  
 भेद लहे गिन ज्ञानके, मनि भुसे ज्युं स्वान ।  
 लोक गडरिया चाल तजि, आपनपो पहचान ॥ १२१ ॥  
 जगन मोह फांसी प्रबाल, कटै न और उपाय ।  
 सन संगन करि ज्ञान की, सहज मुकन होजाय ॥ १२२ ॥  
 कामधेनु अरु कल्पनरु, इण भय सुखदातार ।  
 इण भय पर भय उहुन में, ज्ञान करि निस्तार ॥ १२३ ॥

विद्य पारस अरु जान के, अंतर जानि महंन ।  
 यह लोहा कंचन करे, यह गुण देय अनंत ॥ १२४ ॥  
 प्रथम ज्ञान पीछे दया; यह जिन-मन को सार ।  
 जान सहित किरिया करो, नय उतरो भव पार ॥ १२५ ॥  
 अति आलस परमादियो, भज्जुलाल मुझ नाम ।  
 जानोद्यम कछु ना हुवे, किम सुधरे मुझ काम ॥ १२६ ॥  
 दरशण पिण निश्चल नहीं, नहीं निश्चल चरित्र ।  
 मन भ्रमतो निस दिन रहे, नहिं ठहरे एकल ॥ १२७ ॥  
 ऐसी करी विचारना, रे जिय अवतो चैन ।  
 राग द्वेष पतला हुवे, ऐसा करि संकेन ॥ १२८ ॥  
 च्यारि चरण गुरु रतनजी, तासु भेद चांवीस ॥ \*  
 नामें भेदजु नैरवैं, करी जान थकसीस ॥ १२९ ॥

* १ रतनजी	९ रजीतन	१७ नजीरत
२ तरनजी	१० जीरतन	१८ जीनरत
३ रनतजी	११ तजीरन	१९ ननजीर
४ नरतजी	१२ जीतरन	२० नतजीर
५ तनरजी	१३ रनजीत	२१ तजीनर
६ नतरजी	१४ नरजीत	२२ जीतनर
७ रतजीन	१५ रजीनत	२३ नजीतर
८ तरजीन	१६ जीरनत	२४ जीनतर

ज्ञान पाप हुलसी समानि, शुद्ध छठ मधु मास ।  
संवन रस अम्लिक भु, (१५.३६) रच्यो ज्ञानिपरकाश ॥  
अरिहंत सिद्ध गण इंसजी, उपाध्याय सय साथ ।  
पंच परम गुरु दीजिये, निखल ज्ञान समाध ॥१३१॥





काल अनादि भयो जग भ्रमत, सदा कुमरण हि कीनो।  
 एकवार हू सम्यक युत मैं, निज आनम नहिं चीनो ॥  
 जो निज पर को ज्ञान हं तो, मरण समय दुख काँई।  
 देह विनासी मैं जिन भासी, ज्योति स्वरूप सदाई ॥५॥  
 विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जानो।  
 कर मिथ्या सरधान हिये विच, आत्म नहीं पिछानो ॥  
 यों कलेश हिय धार मरण कर, चारों गति भरमायो।  
 सम्यक दर्शन जान ननि ये, हिरदे में नहीं लायो ॥६॥  
 अथ या अरज करुं प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगो।  
 रोग जनित पीडा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो ॥  
 ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजे।  
 जो समाधि युत मरण होय मुझ, मिथ्या मम छीजे ॥७॥  
 यह नन सान कुधान मई है, देवन ही धिन आवै।  
 चर्म लपटी ऊपर साँहै, भीतर विष्टा पावै ॥  
 अति दुर्गंध अपावन साँ यह, मूर्ख प्रीति बढावै।  
 देह विनासी यह अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावै ॥८॥  
 यह नन जीर्ण कुटी सम आत्म, याने प्रीति न कीजे।  
 नूतन महल मिले जब भाई, नथ या में क्या छीजे ॥  
 मृत्यु होन से हानि कौन है, या को भय मन लावो।  
 समता से जो देह तजोगे, तो शुभ नन तुम पावो ॥९॥

# ॥ समाधि-स्मरण ॥

( नन्द छंद )

चन्दो श्री अरहन्त परम गुरु, जो सब को सुखदाई ।  
 इस जग में दुख जो मैं भुगने, सो तुम जानो राई ॥  
 अथ मैं अरज करुं प्रभु तुम से, कर समाधि उर माँही ।  
 अन्त समय में यह धर मांगूँ, सो दीजै जगराई ॥ १ ॥  
 भव भव में तन धार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो ।  
 भव भव में नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥  
 भव भव में तन पुरुष तनो धर, नारी हूँ तन लीनो ।  
 भव भव में मैं भयो नपुंसक, आत्म गुण नहिं चीनो ॥ २ ॥  
 भव भव में मुर पदवी पाई, नहां सुख अति भोगे ।  
 भव भव में गति नरक तनी धर, दुख पाये बिय योगे ॥  
 भव भव में नियंत्र योनि धर, पायो दुख अति भारी ।  
 भव भव में स्वधर्मा जन को, संग भिला हितकारी ॥ ३ ॥  
 भव भव में जिन स्मरण कानो, दान सुपात्रहि दीनो ।  
 भव भव में समवसरण में, देखी गुणी जन भीनो ॥  
 एनी वस्तु मिली भव भव में, सम्पक गुण नहिं पायो ।  
 ना समाधि युत मरण कियो मैं, ता तै जग भरमायो ॥

काल, अनादि भयो जग भ्रमत, सदा कुमरण हि कीनेतः।  
 एक बार हूँ सम्यक युन मैं, निज आत्म नहिं चीनो ॥  
 जो निज पर को ज्ञान हों तो, मरण समय दुख काँई।  
 देह विनासी मैं जिन भासी, ज्योति स्वरूप सदाई ॥५॥  
 विषय कपायन के बश होकर, देह आपनो जानो।  
 कर मिथ्या संरधान हिये विच्य, आत्म नहीं पिछानो ॥  
 यों कलेश हिय धार मरण कर, चारों गति भरमायो।  
 सम्यक दर्शन ज्ञान तनि ये, हिरदे में नहीं लायो ॥६॥  
 अथ या अरज करुं प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगो।  
 रोग जनित पीडा मत होऊ, अरु कपाय मत जागो ॥  
 ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साना कीजे।  
 जो समाधि युन मरण होय मुझ, मिथ्या मम छीजे ॥७॥  
 यह तन सान कुधान मई है, देवन ही धिन आवै।  
 चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥  
 अति दुर्गंध अपावन सों यह, मृग्य प्रीति बढावै।  
 देह विनासी यह अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावै ॥८॥  
 यह तन जीर्ण कुटी सम आत्म, याने प्रीति न कीजे।  
 नूतन महल मिले जब भाई, तब या में क्या छीजे ॥  
 मृत्यु होन से हानि कौन है, या को भय मन लावो।  
 समता से जो देह तजोगे, नो शुभ तन तुम् पावो ॥९॥



मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के मांहीं ।  
 जारन तन से देन नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥  
 या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अनि ही कीजे ।  
 क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजे ॥१०॥  
 जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिन को फल सुखदाई ।  
 मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, सर्व संपदा भाई ॥  
 राग द्वेषको छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई ।  
 अन्त समय में समता धारो, पर भव पंथ सहाई ॥११॥  
 कर्म महा दुष्ट बैरी मेरो, तां सेती दुख पावे ।  
 तन पिंजरे में बंध कियो मोहि, तासां कौन छुटावे ॥  
 भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढे ।  
 मृत्युराज अथ आय दया कर, तन पिंजरे से काढे ॥१२॥  
 नाना वस्त्राभुषण मैं ने, इस तन को पहराये ।  
 गंध सुगंधिन अन्तर लगाये, पट रस असन कराये ॥  
 रात दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी ।  
 सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी ॥१३॥  
 मृत्यु राय को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊं ।  
 जा मैं सम्यक रतन तीन लहि, आठों कर्म ग्वपाऊं ॥  
 देवो तन सम और कृपामी, नाहिं सु या जग मांहीं ।  
 मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥१४॥

यह सय मोह बढावन हारे, जिय को दुर्गति दाता ।  
 इनसे ममन निचरो जियरा, जो चाहो सुख साना ॥  
 मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेति ।  
 समता धर कर मृत्यु करो नो, पावो संपत्ति तेनी ॥१५  
 चौ आराधन सहित प्राण तज, नौ ये पदवी पावो ।  
 हार प्रति हारे चक्री तीर्थकर, स्वर्ग मुकति में जावो ॥  
 मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, नीनों लोक मझारे ।  
 नाका पाय कलेश करो मत, जन्म जयाहर हारे ॥१६  
 इस तन में क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है ।  
 तेज कांति बल नित्य घटन है, या सम अधिर सु कोहे ॥  
 पांचो इन्द्रो शिथिल भइ अथ, स्वास शुद्ध नहिं आवे ।  
 ता पर भी ममता नहिं छोडे, समता उर नहिं लावे ॥१७  
 मृत्युराज उपकारी जिय को, तन से तोहि छुडावे ।  
 नातर या तन बंदिग्रह में, परयो परयो बिललावे ॥  
 पुदगल के परमाणू मिल के, पिंड रूप तन भासी ।  
 यही मूर्ती में अमूर्ती, ज्ञान ज्योति गुण त्वासी ॥१८  
 रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सय पुदगल लारे ।  
 मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हें सो भाव हमारे ॥  
 या तन से इस क्षेत्र सम्बन्धि, कारण आनयनो है ।  
 पान पान दे या को पाँपो, अथ सम भाव ठनो है ॥१९

मिथ्या दर्शन आत्म ज्ञानविन; यह नन अपना जानो ।  
 इन्द्री भोग गिने सून मैं ने, आपो नाहि पिछानो ॥  
 तन विनशन तें नाश जानि निज, यह अगान दुखदाई ।  
 कुटुम्ब आदि को अपना जानो, भूल अनादि छाई ॥२०॥  
 अथ निज भेद यथारथ समझो, मैं हूं ज्योति स्वरूपि ॥  
 उपजै विनसै सो यह पुदगल, जानो या को रूपि ॥  
 इष्ट निष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सय पुदगल त्यागे ।  
 मैं जय अपना रूप विचारो, तय वे सय दुख भागे ॥२१॥  
 विन समता नन नन्त घरे मैं, तिन में ये दुख पायो ।  
 शस्त्र घात तें नन्त वार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥  
 वार नन्त ही अग्नि माहिं, जर मूयो समती न लायो ।  
 सिंह व्याघ्र अहि नन्त शर मुझ, नाना दुख दिवायो ॥२२॥  
 विन समाधि ये दुख लहे मैं, अथ उर समता छाई ।  
 मृत्युराज को भय नहिं मानो, देव नन सुखदाई ॥  
 या तें जय लग मृत्यु न आवे, तय लग जप तप कीजे ।  
 जप तप विन इस जग के मांहीं, कोई भी ना सीजे ॥२३॥  
 स्वर्ग संपदा तप से पावै, तप से कर्म नसावै ।  
 तप ही से शिव कामिनि पनि हैं, या सों तप चित लावै ॥  
 अथ मैं जानो समता विन मुझ, कोऊ नाहिं है सदाइ ।  
 मान पिना सुन यांश्रव निरिया, ये सय हैं दुखदाई ॥२४॥

मृत्यु समय में मोह करें ये, ता ने आरत हो है ।  
आरत तें गति नीची पावै, यों लग्न मोह नजो है ॥  
और परिग्रह जेने जग म,तिन सं; प्रीति नजो जे ।  
पर भय में ये संग न चाले, नाहक आरत कीजे ॥२५॥  
जे जे वस्तु लसन हैं ते पर, निनसे नेह निवारो ।  
पर गति में ये स्वाध न चाले, ऐसो भाव विचारो ॥  
जो परभय में संग चलें तुझ, निन से प्रीति सु कीजे ।  
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥२६॥  
दश लक्षण मय धर्म धरों उर, अनुकम्पा चिन लावों ॥  
द्विंश कारण नित्य चिन्तवों, द्वादश भावन भावों ॥  
चारों परवी पापध कीजे, अशन रात को त्यागो ।  
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सो अनुरागो २७  
अन्न समय में ये शुभ भावहि, होयें आन सदाई ।  
स्वर्ग मोक्ष फल तेहि दिग्यावें, रिद्धि देहि अधिकाई ॥  
घोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता ला के ।  
जा सेती गति चार दूर कर, थसो मोक्षपुर जा के ॥२८॥  
मन थिरता कर के तुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।  
ये ही तो कां सुख की दाना, और हित् कौड नाई ॥  
भाग्य बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी ।  
हु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी २९

तिन में कष्ट एक नाम कहें मैं, सां मुन जिय चित लाके ।  
 भाव सहित अनमोदै ता से, दुर्गति होय न जा के ॥  
 अरु समता निज उर में आवे, राव अधीरज जावे ।  
 यों निशि दिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच ला-  
 वे ॥ धन्य धन्य मुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी ।  
 एक इयालनी जुग यथा जुन, पांथ भयो दुखकारी ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरता, अपराधन चित धारी ।  
 तां तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३१ ॥  
 धन्य धन्य जु मुकुमाल स्वामी, व्याधी नै तन ग्वायो ।  
 तां श्री श्री मुनि नेक डिगे नहिं, आत्म सां हित लायो ।  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरता, आराधन चित धारी ।  
 तां तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३२ ॥  
 देखो गजमुनि के सिंग अपर, विप्र अग्नि यह वारी ।  
 शीश जले जिमि लकड़ी निन को, तां भां नाहि चिगारी ।  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरता, आराधन चित धारी ।  
 तां तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३३ ॥  
 सनतकुमार मुनि के तन में, कृष्ट-वेदना व्यापी ।  
 छिन्न भिन्न तन तासों हयो, तय चिन्तो गुण आपी ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरता, आराधन चित धारी ।  
 तां तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३४ ॥

श्रेणिक सुन गंगा में हूँ नव, जिन नाम चितारो ।  
 धर सलेखना परिग्रह छांडो, शुद्ध भाव उर धारो ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव वारी ॥३५॥  
 समंतभद्र मुनियर के नन में, ध्रुवा वेदना आई ।  
 ता दुःख में मुनि नेक न डिगिये, चिंतो निज गुण भाई ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव वारी ॥३६॥  
 लालन घटादिक तीस दोष मुनि, कौशांधी नट जानो ।  
 नदी में मुनि बह कर मूवे, सो दुःख उन नहि मानो ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव वारी ॥३७॥  
 धर्म घोष मुनि चंपा नगरी, बाह्य ध्यान धर गाढो ।  
 एक मास की कर मर्यादा, तृपा दुःख सह ठाढो ॥  
 यह उप सर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख? मृत्यु महोत्सव वारी ॥३८॥  
 श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सुआके ।  
 विक्रिय कर दुःख शीत तनो, सो सहो साध मन लाके ।  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित्त धारी ॥  
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव वारी ॥३९॥

वृषभ सेन मुनि उष्ण जिला पर, ध्यान धरो मन लाई ।  
 सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरना, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुम जिय कौन दुख है मृत्यु महोत्सव धारी ॥४०॥  
 अभय घोष मुनि काकंदी पुर, महा वेदना पाई ।  
 वैरी चंड ने सख तन छोडो, दुख दानो अधिकाई ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरना, आराधन चित्त धारी ।  
 नौ तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव धारी ॥४१॥  
 विद्युत्चर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी ।  
 शुभ भावन से प्राण तजे निज, धन्य और बड़ भागी ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरना, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है मृत्यु महोत्सव धारी ॥४२॥  
 पुत्र चिलानी नामा मुनि को, वैरी ने तन धानो ।  
 मोटे मोटे कीट पड़े तन, ता पर निज गुण रातो ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरना, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है मृत्यु महोत्सव धारी ॥४३॥  
 दण्डक नामा मुनि की देहो, वाणन करि अरि भेदी ॥  
 ता पर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महा रिपु छोदी ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर धिरना, आराधन चित्त धारी ।  
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव धारी ॥४४॥

+अभिनन्दन मुनि आदि पांच सै, धानी पेलि जु मारे।  
 तौ भी श्री मुनि समता धारी, पूरव कर्म विचारे ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।  
 नौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव धारी ॥४५॥  
 वाणक मुनि गोधर के मांही, मृदि अगिनि पर जालो।  
 श्री गुरु उर सम भाव धारके, अपनो रूप संमालो ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता आराधन चितधारी ।  
 नौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव धारी ॥४६॥  
 सात शतक मुनिवर ने पायो, हथनापुर में जानो ।  
 वन्ही ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहीं मानो ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ॥  
 नौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव धारी ॥४७॥  
 लोहमयी आभूषण घट के, नाने कर पहराये ।  
 पांचो पाण्डव मुनि के नन में, नौ भी नहीं चिगाये ॥  
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चितधारी ॥  
 नौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव धारी ॥४८॥

+ यह ग्रन्थ दिगम्बर आम्ना वाले ने बनाया होनेसे इसमें दिगम्बर ग्रन्थ कथित साधुओं के नाम दिए हैं. श्वेताम्बर समाजमें स्कन्धाचार्य को ५०० शिष्य महित धानीपि पीरनेका कथन है.



और अनेक भये इस जग में: समतारस के स्वादी ।  
 वे ही हम को हो सुख दाता, हर हृदय प्रमादी ॥  
 सम्यक् दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों ।  
 ये ही मो को सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥२०॥  
 यों समाधि उरमाहीं लावो, अपना दिन जो चाहो ।  
 तज ममता अरु आठों मद को, ज्योति स्वस्ती ध्यावो ।  
 जो कोई निज करत पयानो, ग्रामांतर के काज ।  
 सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ शुभ कारज साज ॥२०॥  
 मात पितादिक सर्व कुटुम्ब सो, नीके शकुन बनावै ।  
 हलदी धनियां पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावै ॥  
 एक ग्राम के कारण एते, करै शुभा शुभ सारै ।  
 जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचै प्यारै ॥२१॥  
 सर्व कुटुम्ब जब रोचन लागै, तोहिं मन्त्रावें सारै ।  
 ये अपशकुन करैं सुन नो को, तृषों क्यों न विचारै ॥  
 अब परगति को चालत विरियां, धर्म ध्यान उर आनो ।  
 चारों अराधन प्यारै आराधो, मोह ननो दुख हानो ॥२२॥  
 जो निशल्य नजो सब दुविधा, आत्मगम सुध्यावो ।  
 जब परगति को करहु पयानो, परम नन्व उर लावो ॥  
 मोह जाल को काट प्यारै, अपना रूप विचारो ।  
 मृत्यु मित्र उपकारी नेरो, यों उर निश्चय धारो ॥ २३ ॥

## दोहा ।

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढो सुनां बुद्धिमान ।  
 सरधा धर नित्य सुख लहो, सूरचन्द शिव थान ॥५४  
 पंच उभय नय एक नभ, सम्बन सो सुखदाय ।  
 आश्विन श्यामा सप्तमी, कहो पाठ मन लाया ॥ ५५

इति समाधि मरण ॥



## दूसरा-समाधि मरण ।

जोगी राता वा नेंद्र छन्द ।

गानम स्वामी चन्दो नामी, मरण समाधि भला है ।  
 भै कथ पाऊं निश दिन ध्याऊं, गाऊं बचन कला है ॥  
 देव धरम गुरु प्रीति महा हृद, सप्त व्यसन नहिं जाने ।  
 त्यागी चाईस अभक्ष संयमी, वारह व्रत नित्य ठाणे ॥१॥  
 चक्षी उखरी चूलि बुहारी, पानी त्रस न विरोधे ।  
 बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं, छहों करम इमि सोधे ॥  
 स्मरण शास्त्र गुरुन की सेवा, संयम तप चउ दानी ।  
 पर उपकारी अल्प अहारी, समायक विधि ज्ञानी ॥२॥  
 जाप जप तिहुं योग धर हृद, नन की ममना टारे ।  
 अन्त समय बेराग्य सम्हारे, ध्यान समाधि विचारे ॥

आग लगे अरु नाच जु डूबे, धर्म विधन जय आवे ।  
 चार प्रकार अहार त्यागि के, मंत्र मुमन में ध्याये ॥ ३ ॥  
 रोग असाध्य जरा बहु देवे, कारण और निहार ।  
 यात बडी है जो बनि आवे, भार भवन को डार ॥  
 जो न धने तो घर में रह करि, सय सों होय निराला ।  
 मात पिता सुत तिय को सांपे, निज परिग्रह अहि का-  
 ला ॥ कछु जानालय कछु श्रायक जन, कछु दुखिया धन-  
 देई क्षमा क्षमा सय ही सों कहि के, मनका शल्य हनेइ ॥  
 शत्रुन सों मिलि निज कर जार, मैं यहु करी है बुराइ ।  
 तुम से प्रीतम को दुख दीनों, ने सय क्षम हो भाई ॥ ५ ॥  
 धन धरनी जो मुख सो मांगे, सो सय दे सन्तोपे ।  
 छोड़ो काय के प्राणी ऊपर, करुणा भाव विशेषे ॥  
 ऊंच नीच घर बैठ जगह इक, कुछ भोजन कुछ पेंले ।  
 दूधाधारी क्रम क्रम तजि के, छाछ अहार करे पहेंले ॥ ६ ॥  
 छाछ त्याग के पानी राखे, पानी ताजि संथारा ।  
 भूमि मांहि धिर आसन मांहि, साधर्मि दिग प्यारा ॥  
 जय तुम जानो यह न जप है, तब जिन चार्णी पढ़िये ।  
 यों कहि मौन लिये सन्यासी, पंच परम पद गाहिये ॥ ७ ॥  
 चार आराधन मन में ध्याये, बारह भावन भावे ।  
 दश लक्षण मन धर्म विचारे, रत्न-त्रय मन न्याये ॥

पैंतिस सोलह पट पन चारों, दुइ इक वरन विचारें । \*  
 काया तेरी दुःख की डेरी, ज्ञान मयी तू सारे ॥ ८ ॥  
 अजर अमर निज गुण सो पूरे, परमानन्द सुभावे ।  
 आनन्द कन्द चितान्द साहय, नीन जगत पति ध्यावे ॥  
 ध्रुवा तृपादिक होइ परिपह, सहै भाव सम राखे ।  
 अतिचार पांच सब त्यागे, ज्ञान सुधारस चाखे ॥ ९ ॥  
 हाड मांस सब सूखि जाँय जय, धरम लीन तन त्यागे ।  
 अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्ग में, सेज उठे ज्यों जागे ॥  
 दहाँ ते आवै शिव पद पावै, विलसे सुखव अनन्तो ।  
 शान्त यह गति होय हमारी, जैन धरम जयवन्तो ॥ १० ॥

### सागरी संधारा का पाठ

दोहा—आहार शरीर उपाधी । पचखुं पाप अठार ॥  
 मरजावूं तो चोसीरे । जीवूं तो आगार ॥ १ ॥  
 सूचनाः—शयन करती वक्त या आग्नि सिंह सर्पादि किसीभी प्रकारका  
 भय उत्पन्न होवे तब यह पाठ कहना. जाग्रत होकर तथा  
 उपसर्ग निवृत्त तब ५ नवकार मंत्र का स्मरण करने से खुला होवे.

\* णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,  
 णमो उवज्झायाणं, णमो लोणं सब्ब साहणं ॥ यह ॥ ३५ ॥  
 अरिहंत, सिद्ध आचार्य, उपध्याय, साधु, ॥ यह ॥ १६ ॥  
 अरिहंत, सिद्ध ॥ यह ६ ॥ अ. सि. आ. उ. सा. ॥ यह ५ ॥  
 सिद्ध, साधु ॥ यह ४ ॥ सिद्ध ॥ यह २ ॥ उँ ॥ यह १ ॥ इसने  
 में हर किसिका ध्यान करे ॥

## रत्नाकर--पच्चीसी.

शुभ केलिके आनन्द के । धन के मनोहर धाम हो ॥  
 नर नाथ से सुर नाथ से । पूजित चरण गत काम हो ॥  
 सर्वज्ञ हो सर्वोद्य हो । सय से सदा संसार में ॥  
 प्रजा कलाके सिन्धु हो । आदर्श हो आचार में ॥ १ ॥  
 संसार दुःख के वैद्य हो । त्रैलोक्य के आधार हो ॥  
 जय श्रीगणेश ! रत्नाकर प्रभो । अनुपम कृपा अवतार हो ॥  
 गन राग ! हे विजिति मेरी । मुग्ध की सुन लीजीये ॥  
 क्यों कि प्रभु तुम विज्ञ हो ॥ मुझको अभय घर दीजीये ॥ २ ॥  
 माता पिताके सामने । घोली सुना कर मोतली ॥  
 करता नहीं क्या अज्ञबालकाथान्य वश लीला बली ॥  
 अपने हृदय के हालको । त्यों ही यथोचित रीतसे ॥  
 मैं कह रहा हूँ, आपके । आगे विनय से प्रीतिसे ॥ ३ ॥  
 मैंने नहीं जगमें कभी । कुछ दान दीनों को दिया ॥  
 मैं सचरित भी हूँ नहीं । मैंने नहीं तप भी किया ॥  
 शुभ भावनाएं भी हुई । अब तक न इस संसार में ॥  
 मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही । भ्रमसे भवोदधि धार में ॥ ४ ॥  
 क्रोधाग्नी से मैं रातदिन हा । जल गहा हूँ हे प्रभो ।  
 मैं लोभ नामक साँप से । काटा गया हूँ हे प्रभो ।

अभिमान के खल ग्राह से। अज्ञान बश में ग्रहस्त हूँ ॥  
 किस भाँति हो स्मृत आपाज्जाया जाल से मैं व्यस्त हूँ ५  
 लोकेश ! पर-हित भी किया। मैंने न दोनों लोक में ॥  
 सुख लेश भी फिर क्यों मुझे हो। चोंचता हूँ शोक में ॥  
 जग में हमारे से नरोंका। जन्म ही सब व्यर्थ है ॥  
 मानो जिनेश्वर ! वह भवों की। पूर्णता के अर्थ है ॥६॥  
 प्रभु ! आपने निज सुख सुधाका। दान यद्यपि दे दिया ॥  
 यह ठीक है, परचित्तने। उसका न कुछ भी फल लिया ॥  
 आनन्द रस में डूब कर। सद्गुन वह होना नहीं ।  
 है वज्र सा मेरा हृदय। कारण घडा बस है यही ॥७॥  
 रत्न त्रयी दुष्प्रप्य है। प्रभु से उसे मैंने लिया ॥  
 यहुकाल तक घहुवार जब। जगका भ्रमण मैंने किया ॥  
 हा ! ग्वागया वह भी विवश। मैं नींद आलस में रहा ॥  
 अब बोलिये उसके लिए। रोज प्रभु किस के यहाँ ॥८॥  
 संसार ठगने के लिए। वैराग्य को धारण किया ॥  
 जग को रिझाने के लिए। उपदेश भर्मोंका दिया ॥  
 झगडा मचाने के लिए। मम जीभपर विद्या बसी ॥  
 निर्लज्ज हो कितनी उडाऊँ। हे प्रभो ! अपनी हंसी ॥९॥  
 परदोष को कहकर सदा। मेरा बदन दूषित हुआ ॥  
 न्यत्र कर पराई नारियों को। हा ! नयन दूषित हुआ ॥

मन भी मलीन है सोचकर। परकी बुराई है प्रभो ॥  
 किस भानि होगी लोकमें। मेरी भलाई है प्रभो ॥१०॥  
 मैंने बढ़ाई निज विवशता। हों अवस्था के घडी ॥  
 भक्षक रतीश्वर से हुई। उत्पन्न जो दुःख राक्षसी ॥  
 हा ! आपके सम्मुख उसे। अति लाजसे प्रगट किया।  
 सर्वज्ञ हो सब जान तो स्वयं मेव संसृति की क्रिया ॥११॥  
 अन्यान्य मंत्रों से परम। परमेष्ठी मंत्र हटा दिया ॥  
 सच्छाम्र वाक्यों को। कुशाम्रों से मैंने दवा दिया ॥  
 विधि उदय को करने वृथा। मैंने कु देवाश्रम लिया ॥  
 हेनाथियों भ्रम बश अहितमैंने नहीं किया किया १२  
 हा नज दिया मैंने प्रभो। प्रत्यक्ष पाकर आप को ॥  
 अज्ञान बश मैंने किया ॥ फिर देवीये किस पाप को ॥  
 वामाक्षियोंके कुच कटाक्षों। पर सदा भरता रहा ॥  
 उन के विलासों को हृदय में। ध्यान को करता रहा ॥१३॥  
 लम्ब कर चपल दृग युवनियोंके। मुख मनोहर रस मई ॥  
 जो मन पटल पर राग। भावों की मलिनता बस गई ॥  
 वह शाम्र निधीके शुद्ध जल से। गीन कयो धोई गई ॥  
 बतलाइ ए यह आपही। मम बुद्धि नां ग्वाई गई ॥१४॥  
 मुझमें न अपने अंग के। साँदर्य का आभास है ॥  
 मुझमें न गुणगण है विमल। न कला कलाप विलास है ॥

सुता न मुझमें स्वप्न को भी । चमकती है देखिए ॥  
 तो भी भराहूँ गर्व से मैं । मूढ़ हो किस के लिए ॥ १५ ॥  
 हा ! नित्य घटती आयु है । पर पाप प्रति घटति नहीं ।  
 आई बुढ़ती पर विषय से । कामना हटती नहीं ॥  
 मैं यत्न करता हूँ दवामें । धर्म में करता नहीं ॥  
 हमें महिमा से ग्रसित हूँ । नाथ ! बच सकता नहीं १६  
 अय पुण्य को भव आत्म को । मैंने कभी माना नहीं ॥  
 हा ! आप आगे हैं ग्वडे ! दिन नाथ से यद्यपि यही ॥  
 तो भी ग्वलों के वाक्य को । मैंने सुना कानों वृथा ॥  
 धिक्कार मुझ को है । गया मम जन्म ही मानों वृथा १७  
 सत्पात्र दान देव स्तरग । कुछ नहीं मैंने किया ॥  
 मुनि धर्म श्रावक धर्म का भी, नहीं सविधि पालन किया ॥  
 नर जन्म पाकर ही वृथा ही । मैं उसे ग्वाना रहा ॥  
 मानों अकेला घोर घन में । व्यर्थ ही रोता रहा ॥ १८ ॥  
 प्रत्यक्ष सुग्वकर जैन मत में । प्रीति खेरी थी नहीं ॥  
 जिन नाथ ! मेरी देखिये । है मूढ़ता भारी यही ॥  
 हा ! काम मधुक कल्पद्रुमादिक । के यहाँ रहने हुए ॥  
 हमने गवाया जन्मको । धिक्कार दुःख सहने हुए ॥ १९ ॥  
 मैंने न रोंका रोग दुःख । संभोग सुग्व देखा किया ॥  
 मन में न मृन्धु भय । धन-लाभ ही लेखा किया ॥



हा ! मैं अथम युवनि जनोके । ध्यान नित करना रहा ॥  
 पर नरक कारागार से । मनमें न म डरता रहा ॥२०॥  
 सद्वृत्ति से मन में न मैंने । साधुता हा साधिता  
 उपकार करके कीर्ति भी । मैंने नहीं कृष्ण अर्जिता  
 चार तीर्थ के उद्धार आदिक । कार्य कर पाये नहीं ।  
 नर जन्म पारस तुल्य निज । मैंने गवांया व्यर्थ ही ॥२१॥  
 शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी । करना मुझे आता नहीं  
 ग्वल वाक्या भी गत क्रोध हो । सहना मुझे आता नहीं  
 आध्यात्म विद्या है न मुझ में । है न कोई सत्कला  
 फिर देव ! कैसे भवोदधि । पार होवे गा भलां ? ॥२२॥  
 सत्कर्म पहले जन्म में । मैंने किया कोड़े नहीं ॥  
 आशा नहीं जन्मान्य में । उसको करुंगा मैं कहीं  
 इस भौतिका यदि हूँ जिनेश्वर । क्यों न मुझको कष्ट  
 संसार में फिर जन्म तीनों । क्यों न भैरे नष्ट हो ॥२३॥  
 है पूज्य ! अपने चरित्र को । बहु भौति गाऊँ क्या वृ  
 कुछ भी नहीं तुमसे छिपी । है पाप मय मेरी कथा  
 क्यों कि त्रिजग के रूप हो तुम । ईश हो सर्वज्ञ हो  
 पथके दर्शक हो तुम्ही । मम चित्त के मर्मज हो नि  
 दीनोद्धारक धीर । आपसम अन्य नहीं है ।  
 कृपा पात्र भी नाथ ! न मुझसा अपर कहीं है ॥

तो भी माँग नहीं धान्य । धन कभी भूल कर ॥  
 अहन् ! केवल घोघिरत्न । होवे मंगल कर ॥  
 श्री रत्नाकर गुण गान यह । दुरित दुःख सब के हरे ॥  
 वस एक यही प्रार्थना । मंगल मय जग को करे ॥ २५ ॥

## “ मेरी भावना ”

भावना का रहस्य:—किसी विषय को पुष्ट बनाने, उसमें चित्तकी स्थिरता, भावोंकी दृढ़ता, सम्पादन करने अथवा नद्रूप होने. या उसकी संप्राप्ति के आदि के लिए, जो उसका तथा उस के साधनों का पुनः पुनः सांचन्तन और समिहन किया जाता है, उसे भावना कहते हैं. “ याद्वाशि भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ” अर्थात् जो मनुष्य सबे हृदय से शुद्ध अन्नःकरण से जैसी भावना करता है उसको वैसी ही सिद्धि की प्राप्ति होती है.

गुरुमंत्र:—“ आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्, ” जो जो बानें क्रिया एं चेष्टा एं तुमारे प्रतिकूल हैं, जिनके दूसरो द्वारा किए हुए व्यवहारोंको तुम अपने लिए पसंद नहीं करने, अहित कर और दुःख दार्ई समझने हो, उनका आचरण तुम दूसरों प्रति मन

करो " यही पापों से बचानेका गुरुमंत्र है, इसके अनुष्ठान की निरंतर भावना रखनी चाहिये. ( छन्द )

जिसने राग द्वेष कामादिकाजोने, सब जग जानलिया।  
 सब जीवों को मार्ग मोक्ष का। निःस्पृह हो उपदेश दिया।  
 बुद्ध वीर जिन हरिहर ब्रह्मा। या उसको स्वाधेन कहे।  
 भक्ति भाव से प्रेरित हो यहाचित्त उसी में लीन रहे।  
 विषयों की आशा नहीं जिन को साम्प-भाव धन रखने  
 हैं। निजपरके हित साधनमें जो। निशदिन तत्पर रहने हैं।  
 स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या। विना मूढ जो करने हैं।  
 ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के। दुःख समुह को हरने हैं।  
 रहे सदा सत्संग उन्हीका। ध्यान उनहीका नित्य रहे।  
 उन ही जैसी चर्या में यह। चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥  
 नहीं सनाऊँ किसी जीव को। झूठ कभी नहीं कहा करूँ ॥३॥  
 अहंकार का भान न रखूँ। नहीं किसीपर क्रोध करूँ ॥  
 देख दूसरों की बढती को। कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ ॥  
 रहे भावना ऐसी मेरी। सरल सत्य व्यवहार करूँ ॥  
 यने जहाँतक इस जीवन में। औरों का उपकार करूँ ॥४॥  
 मैत्री भाव जगत में मेरा। सबजीवों से नित्य रहे ॥  
 दीन दुःखी जीवों पर मेरे। डरसे करुणा स्रोत करूँ ॥

दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतोंपर । शोभ नहीं मुझको आये ॥  
 साम्य भाव रक्षूं में उनपर। ऐसी परिणति हो जावे ॥५  
 गुणी जनों को देव हृदयमें । मेरे प्रेम उमड़ आवे ॥  
 येन जहाँतक उनकी सेवा । कर के ये मन सुख पावे ॥  
 होऊँ नहीं कृतघ्न कभी में । द्रोह न मेरे उर आवे ॥  
 गुणग्रहण का भाव रहे निनादृष्टी न दापों पर जावे ॥६  
 कोई बुरा कहो या अच्छा । लक्ष्मी आवे या जावे ।  
 लाखों बपों तक जीऊँ या । मृत्यु आज ही आजावे ॥  
 अथवा कोई कैसा ही भय । या लालच देने आवे ॥  
 तो भी न्याय मार्ग से मेरा। कभी न पद डिगने पावे ॥७  
 होकर सुखमें मग्न न फूले। दुःख में न कभी घबरावे ॥  
 पर्वत-नदी-श्मशान-भयानका अटवी से नहीं भय गावे  
 रहे अडोल अकंप निरन्तर। यह मन दृढतर बन जावे ॥  
 इष्ट वियोग-अनिष्ट योगमें। सहन शीलता दिखलावे ॥८  
 सुखी रहे सब जीव जगत के । कोई कभी न घबरावे ॥  
 वैर पाप अभिमान छोड़ जगानित्य नये मंगल गावे ॥  
 घर घर चर्चा रहे धर्म की । दुष्कृत दुष्कर हो जावे ॥  
 ज्ञान चरित उन्नत क अपना। मनुज जन्म सब फल पावे २  
 ईति भीति व्यापे नहीं जगमें। वृष्टि समय पर हुआ करे।  
 धर्मनिष्ठ होकर राजा भी । न्याय प्रजाका किया करे ॥

रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले । प्रजा शांति संजिया करे ॥  
 परम अहिंसा-धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे १०  
 फैले प्रेम परस्पर जगमें । मोह दूर पर रहा करे ॥  
 अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहीं । कोई मुग्ध से कहा करे ॥  
 बन कर सय 'युग-वीर' हृदय से । देशोन्नति रत रहा करे ॥  
 वस्तु स्वरूप विचार खुशी से । सय दुःख-संकट सहा करे ॥

तथास्तु

॥ दोहा ॥

सो शात की एक भारत । सकल शास्त्र को सार ॥  
 दया दान दम आत्मा । तिलोक कहे उरधार ॥

शमता

सीधी साहीं मोक्ष दे । उलटी दुर्गत देन ॥  
 अक्षर तीन है ओलखो । दोष लघु गुरु एक ॥



# श्री उपदेश शतक

## मङ्गला चरणम्

( अनुदय )

मोक्ष मार्गस्य नेतारं । नेतारं कर्म भू भृत्ताम् ॥  
ज्ञानारं विश्वतत्त्वनां । वन्दे तद्गुण लब्धये ॥ ? ॥

अर्थ—जिनों ने कर्म रूप पर्वतों को भेद कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया, जिसके द्वारा सर्व लोक में रहे पदार्थोंको युगपत् जानें देखे. जिस कर उद्धर्म स्थापन कर मोक्ष के नेता [ले जाने वाले] वने प्रथम उन जिनेश्वर को नमस्कार करताहुं॥१॥

“ जेहर का कीडा जेहर में खुशी ”

[ श्लोक— शार्दूल विकीर्णित वृत्तम् ]

विप्राऽस्मिन्नगरे महान् वसति क? स्तालद्रुमाणांगणः ।  
को दाता? रज कां, ददाति वसनं प्रानग्ृहित्या निशि ॥  
को दक्षः? परदार वित्त हरणं सर्वेपि दक्षा जनाः ।  
कस्मार्जीवासे हे सग्वे? विपकृमि न्यायेन जीवाम्यहम् ॥  
भावार्थः—एक पण्डित परदेश में जाते हुए किसी बड़े शहर को देख सम्मुख आते ब्राह्मण से प्रश्न किया कि--अहां भाई ! इस शहर में बड़ा कोण है? ब्राह्मण ने कहा—ताडवृक्ष बड़े हैं.

फिर पण्डित ने पूछा कि--बोगड़ बड़ा न हो तो कुछ हरकत नहीं, किन्तु कोई दातार तो है! । ब्राह्मण ने कहा--हां, धोर्वा, क्यों कि प्रातः काल में लोगों लम्बे हाथ कर उस में याचना करते हैं, उन्हें वह बख्श दान देता है; अर्थात् धोर्वा के सिवाय और कोई दातार नहीं है । फिर पण्डित ने पूछा--ठीक, कोई दातार नहीं है तो कुछ हरकत नहीं, किन्तु कोई होंशार [ चतुर ] मनुष्यभी है ! ब्राह्मण ने कहा--हां, परधन हरने में और परस्त्री गमन करने में सबही बड़े होंशार हैं, तब फिर पण्डित ने कहा--ओरे भाई ! ऐसे जेहर में तू किम प्रकार जीता रहता है ? ब्राह्मणने कहा कि जैसे जेहरका कीड़ा जेहर में मजा मानता है, तैसे में भी यही मजा मानता हूं.

“ विनाश काल में बुद्धि भी विपरित हो जाती है ”

( श्लोक--उपजाति वृत्तम् )

नभूत पूर्वो नच केन दृष्टोऽहेम्नः कुरंगो न कदापि वानां॥  
नथापि तृष्णा रधुनन्दनस्याविनाशकालेविपरित बुद्धिः

अर्थः—सुवर्ण मृग ( हिरन ) पहिले कभी ऊभा नहीं जैसेही कभी किसी ने देखा भी नहीं, और न कमी किसी के मुह से मुना कि सुवर्ण मृग होता है, तथापि रामचन्द्रजी को मायामय सुवर्णमृग को पकड़ नेकी तृष्णा हुई, तब तो रावण सीताजी का हरण कर गया, अर्थात् विनाश के काल में बुद्धि भी विपरित हो जाती है.

“ पुण्योदय में जो करे सो अच्छा होवे ”

( श्लोक—अनुष्टुप वृत्तम् )

आपधं शकुनं मंत्रो । नक्षत्रं ग्रह देवताः ॥

भाग्य काले प्रार्सादंति । अभाग्येयांति विक्रियाम् ॥३॥

अर्थः—औपधी, शकुन, मंत्र, नक्षत्र, ग्रह और देवता, इत्यादि मन्त्रों पुण्य के उदय में मुख दाता हो जाते हैं और पाप का उदय होता है तब दुःख दाता हो जाते हैं.

“ ग्रह सेभी कर्म बलवान हैं ”

कर्मणो हि प्रधानत्वं । किं कुर्वन्ति शुभग्रहाः ॥

वशिष्ट दत्ता लग्ने पि । रामः प्रव्रजितो वने ॥ ४ ॥

अर्थः—जो ग्रह बलवान् हो तो, ज्योतिष शास्त्र के विशारद वशिष्ट ऋषिने रामचन्द्रजी को राज्यागोहण का मुहूर्त निकाल दिया था, उसही मुहूर्त में रामचन्द्रजी को वनवास के लिये गमन करना पड़ा ! इस लिये कर्म काही प्रधान पना है, नकि ग्रहका !

‘ बुढ़े से बच्चेका प्रश्न ’

बुढ़े बाबा ! तुम सदैव नीनि झुक कर क्या द्रंदते चलते हो?

बुढ़े बाबाने जबाब दिया की—

जरा दंड प्रहारेण । भग्न कटि रहं कृतः ॥

गमं मे यौवनं रत्नं । पश्यामि नत्पदेपदे ॥ ७ ॥



अर्थ:—हे बच्चे ! जरा ( वृद्धावस्था ) रूप राक्षसी के दंड प्रहार से मेरी कम्मर बाँकी होगई और यौवन [ युवनी ] रूप रत्न गुम गया, उसही को पग पग पर डूँढ़ता हुआ सदैव फिरता हूँ, किन्तु मिलना ही नहीं है !

‘ कौनसा मनुष्य पशु के जैसा? ’ उत्तर

( श्लोक-उपजाति वृत्तम् )

येषां न विद्या न तपो न दानं । न चापि शीलं न गुणो न धर्मः ॥  
ते मृत्युलोके भुविभार भूता । मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ ६ ॥

अर्थ:—जिनने सर्दीयाभ्यास नहीं किया, तप धर्म भी नहीं किया, सत्पात्रमें दान भी नहीं दिया, स्ववश शील भी नहीं पाला, किसीके गुणग्रहण भी नहीं किये, धर्मागधन भी नहीं किया, ऐसा मनुष्य मनुष्यलोकमें पृथ्वी पर भार भूत, मनुष्य देह धारी जंगल के मृग के समान नीरा पशु जाणना.

“ दानार्थ-राजा प्रधान के प्रश्नोत्तर ”

( श्लोक अउष्टुप )

आपदर्थं धनं रक्षेत् । भाग्यवंतः कचापदः ॥  
कदापि क्रुपितं देवं । संचितोपि विनश्यति ॥ ७ ॥

अर्थ:—दान शूर राजा को दान मार्ग में अपरिमित द्रव्य व्यय करता देख भंडार खाली होजाने का डर ला, प्रधान ने राजा

हो दानसे रोकने के लिये राजाजी की दृष्टि पड़े वहाँ लिखा कि "आपदर्थं धनं रक्षेन्" अर्थात् आपदा का निवारण करने के लिये धन की रक्षा करना आवश्यकिय है। राजा पढ़कर मतलब हेतु समझा और उसके नीचे लिखा कि—"भाग्यवंत क्वापदः" अर्थात् भाग्यवान् को आफत आतीही नहीं है, उसके नीचे प्रधान ने लिखा कि—"कदापि कुपितो दैव" अर्थात्-कदाचित् दैव-कर्म कोपित हों जावे तो किसे मालुम, उसके नीचे राजा ने लिखा कि—"साधितोपि विनश्यति" अर्थात्-जो दैव कुपित हुए तो संचित कर रखा धन भी नाश पा जावेगा, इसलिये दान में लगा कर उसका सार्थक करनाही अच्छा है।

“पत्त की पनातल पे जेमन का पाप”

गृधो द्वादश जन्मानि । दश जन्मानि शूकरः॥  
कुर्कटः शन जन्मानि । पत्राली भाजने भवेत् ॥ ८ ॥

अर्थः—पत्त की पनातल ( पत्रावली ) में भोजन करने वाला १२ भव गीध के, १० भव सूकरके, और १०० भव कुर्कट ( मुँगे ) के करने पढते हैं!!

“कंद मूल खाने का पाप, और छोड़ने का धर्म”

रक्त मूलं भवेत् कन्दं । तुल्यं गोमांस भक्षणम् ॥

भक्षणाक्षरकं याति । वर्जनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥९॥

अर्थ—लाल कंदे, मूले, ग्वालु, गाजर, शकरकन्द,

आदि खानेभे गाय के मांस भक्षण जैसा पाप लगता है. कंद मूल खानेवाला नरकमें जाता है और त्यागने(छोड़ने)वाला स्वर्गमें जाता है.

## सिंह और बकरे की कहानी

बकरे बकरी के यूथ से बिलुडकर एक बकरा किसी गहन जंगल में चला गया. वहां मन मुक्ता खाने के लिये हराघाम परो; पीनेके लिये झरनाका ठंडा पानी मिलनेसे खा पीकर बकरा लष्ट पुष्ट धिष्ट बनगया. बाल बडे २ होगये, शृंग लम्बे हो बक्र हो गये, नेत्र हलदी के जैसे पीले हो गये इत्यादि. शरीराकृति ऐसी विक्राल हो गई कि-किसी के पहचान नें में न आवे कि यह बकरा है. एक वक्त वहां सिंह आगया और अनोखा जानवर देख डरगया, किन्तु हिम्मत बान्ध उसके सन्मुख चला. बकरा सिंह को सन्मुख आता देख डरा तो सही, किन्तु उसे एक श्लोक का स्मरण हो गया:

उद्यमं साहसं धैर्यं । बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ॥  
पडैते यत्र वर्तते । तत्र देवः सहाय कृत् ॥ १० ॥

अर्थः—जिनमें—१ उद्यम, २ साहस, ३ धैर्य, ४ बुद्धि, ५ शक्ति और ६ पराक्रम. यह ६ गुण होते हैं, उनका सहायक देवता होता है. ऐसा विचार कर हिम्मत धर खडा रहा. और उस से सिंहने पूछा की—

किमर्थं बुद्बुदा कारं । किमर्थं नेत्र पिंगलम् ॥

किमर्थं केश धारित्वं । किमर्थं यन सेचिनम् ॥ ११ ॥

अर्थ:—हे बिलक्ष शरीरके धारक प्राणी ! तुम कौन हो ? तुमारे जैसे शरीरवाला प्राणी मैंने कहींभी देखा नहीं. और तुमारा जैसा बडबडान, बोलना किसिका सुना नहीं. तैसेही तुमारी जैसे सिली आँखो वाला और लम्बे बालवाला प्राणी मेरे जानने में भी नहीं आया. अहो इति आश्चर्य, तुम यहां किसको ढूँढते फिरते हो सो कृपाकर फरमाइये! तब बकरा बोला:—

शतं, व्याघ्र मयाहृत्वा । हस्तिनां च शतत्रयम् ॥  
एकःसिंहो न पश्यामि । तस्मादवनं च सेविनम् ॥१२

अर्थ:—अहो बनवासी प्राणी ! मैंने सो व्याघ्र को मारे हैं और तीन सो हात्ती को मारे हैं. किसी ने मुझे से कहा की-इस बन में एक सिंह रहता है उस को यदि तुम मार डालो तो बहुत अच्छा होवे. इस लिये मैं ढूँढता फिरता हूँ. किन्तु अभीतक मेरे देखने में आया नहीं. तुमारे देखने में आवे तो मुझे बताना. यों सुन कर सिंह घबराया और विचारने लगा कि मेरे अहो भाग्य हैं कि इसने अभीतक मुझे पहचाना नहीं. यों सोच यह कहने लगा कि-मुझे मिलेगा तो, आपको बतावुंगा. यों कह कर वहां से भग गया. और किसी पहाड पर खडा रहकर उसको देखने लगा; तो वह बकरा आक के पत्ते खा रहा है. तब सिंह को विचार हुआ कि बकरे के सिवाय दुसरा कोई भी पशु आक के पत्ते खाता नहीं है, इसलिये यह बकराहि हुआ चाहिये. यों विचार दौडकर वहां

आया और उस बकरे को मार गिराया! इसलिये ही कहा है कि--  
कर्णव्यं भोजनं गुप्तं । दुर्बलेन विशेषतः ॥

अर्क पत्र प्रसादेन । अजा पुत्रो विनश्यति ॥ १३ ॥

अर्थ:—भोजन करना तो गुप्त करना, तैसेही दुर्बलोको तो प्रसिद्ध-कोई देखे ऐसी जगह भोजन कभी नहीं करना, क्योंकि मिह के देखते बकरेने आक के पान खाये तो वह मारा गया॥

“ ज्ञान के दाता गुरु का उपकार मानना ”

एकाक्षर प्रदानारं । यो गुरुं नैव मन्यते ॥

श्वान योनि शतं गत्वा । चंडाले श्वपि जायते ॥१४॥

अर्थ--जो कोई एकभी अक्षर पढ़ानेवाले गुरुका उपकार नहीं मानेगा, उनकी बुराई करेगा, उनको दुःख देगा, वह १०० भव कुत्तेका करेगा और फिर अनेक भव चांडाल का भी करना पड़ेगा

“ ब्राह्मण और शृंगाल की कहानी ”

किसी जंगल में एक शियाल को तीन दिन खाने को मिलने से वह क्षुधातुर बना, नदी के किनारे में मुडदे को चहत देख खंच लिया और उसे खाने लगा. तब उस मुडदे को पहचान कर एक ब्राह्मण उस शियालसे कहने लगा कि--अरे शियाल ये तेरे खाने लायक नहीं हैं, क्यों कि:—

( श्लोक--शादले विर्जांति वृत्तम् )

हम्ना दान विवर्जितौ । शनि पटौ स्वरस्वतं द्रोहिणौ

नेत्रे साधु विलोक नेन रहिते । पादौ न तीर्थं गर्ता ॥  
 अन्यायार्जित वित्त पूर्ण मुदरं । गर्वेण तुंगं शिरो ।  
 रेरे! जम्बूक! मुंच मुंच सहसा । नीचस्य निन्द्यं यपु ॥१॥

अर्थ--हे सियाल ! इस मुडदेके हाथने कभी दान दिया नहीं, इस लिये हाथ खाने लायक नहीं हैं, कान से कभी शास्त्र श्रवण नहीं किये, कभी सुना भी होगा तो ज्ञानी का द्रोह किया. इस लिये इसके कान भी खानेके लायक नहीं हैं. आँसो से कभी सरसुरों के दर्शन किये नहीं, इसलिये आँसोभी खाने लायक नहीं हैं, पावोंसे कभी तीर्थ यात्रा-साधु साध्वी के दर्शनार्थ गमन किये नहीं, इसलिये पांवभी खाने लायक नहीं हैं. अन्याय--अनीतिमें द्रव्योपार्जन कर उदारपूर्ण किया है, इसलिये पेटभी खाने लायक नहीं है. और यह मरा बहान्तक इसके मस्तक में से अइंकार दूर हुवा नहीं. इसलिये मस्तकभी खाने लायक नहीं है. यों इसका सब शरीर निन्दा पात्र है. जो तू इसका भक्षण करेगा तो इस भव में तेरी बुद्धि अष्ट होगी और आगे के भवों में दुःख पावेगा. यों मुन शृंगाल उस मुरदे को छोड़ चला गया. सारांस--पापी मनुष्यों का सब शरीर निकम्मा है. उसकी संगत भी कामकी नहीं.

“ राजा और ब्राह्मणकी कहानी ”

किसी ग्राम के राजा का विश्वास मनुष्यों के उपर से ऊठ जाने से उसने अपने पर्यंक की रक्षा करने के लिये एक मुनिश्चिन विश्राम

## “ महाजनों की महिमा ”

[ श्लोक-उपज्ञानि वृत्तम् ]

यनेपि सिंहामृगमांस भक्षिणोऽबुभुक्षिता नैव । तृणं चरन्ति ॥ एवं कुलीना व्यसना भिभूताः । न नीच कर्माणि समाचरन्ति ॥ २९ ॥

अर्थ--वनमें निवास करने वाला सिंह भूखकर अतिही पीड़ित हुआ तृण [घास] कभी नहीं खाएगा, वृद्ध तो मृगादि का मांसही भक्षण करेगा, ऐसेही जो महाजन--उत्तम पुरुष हैं वे मरणांतिक संकट पड़ने परभी चोरी जारी मांस भक्षणादि नीच कर्मोंका आचरण कभी भी नहीं करेंगे, वे तो सदैव उत्तम कर्मोंसेही जीवन बीतावेंगे.

## “ महाजनो ही परोपकारी होते हैं ”

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्बुः स्वयं न । वादन्ति फलानि वृक्ष ॥ नादन्ति सस्यं म्वल्लु चारिवाहाः, । परोपकाराय सतां विभूतयः ॥ ३० ॥

अर्थः--नदी अपने पानीको आप पीती नहीं है, वृक्षों अपने फल को आप स्वयं खाते नहीं हैं, वर्षाद वर्षने में धान्य की उत्पत्ति होती है, उस धान्य को वर्षादि खाता नहीं है, मतलब कि उक्त तीनों ही परोपकारार्थ ही इतना परिश्रम उठाते हैं, यही कर्तव्य उत्तम पुरुषों का है, वे परोपकारार्थ ही परियत्न करते रहते हैं.

## “ सन्तों के लक्षण ”

आरं जलं वारिमुचः पिबन्ति । तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति ॥  
 अमृतं स्थां दुर्जनं दुर्वेचांसि । पीत्वा हि सूक्तानि  
 समुद्गिरन्ति ॥ ३१ ॥

अर्थ:— जैसे ममुद्र का खा । पानी बदलों पीकर, उसे मधुर  
 मिष्ठ बनाकर जगन् को बाँट देते हैं. तैसे ही सन्त महात्मा ओ  
 दुर्जन मनुष्यों के कटु वचनों का श्रवणेंद्रिय से पान कर उनको  
 अमृत जैसा मिष्टोपदेश सुनाकर सुखी करते हैं.

‘दुर्जनों सज्जनों का कुछ नुकसान नहीं कर सकते’  
 कर्णं जपानां वचनं प्रपंचाः । महात्मनः कापि न दूषयन्ति ।  
 भुजंगमानां गरल प्रसंगान्नापेयनां यांति महा सरांसि ॥

अर्थ:— जैसे बड़े तलाव में अनेक बड़े २ सर्पों अपने मुखसं  
 गरल [ जेहर ] का वमन करते हैं किन्तु तलाव को वह जेहर  
 बढ़ता नहीं है, तैसेही दुष्ट पुरुष ने वमन किया दुर्वचन रूप  
 विपकी अमरभी मज्जन पुरुषों के हृदय रूप सरोवर में कभी  
 नहीं होती है.

## “ दुर्जन छोड़ने योग्य है ”

[ श्लोक अनुदुप ]

दुर्जनः परि हर्तव्यो । विद्ययालं कृतो पिसन् ॥  
 माणिना भूपितः सर्पः । किमसौ न भयंकरः ॥ ३३ ॥



अर्थ:—जैसे मणिधर सर्प को भयंकर जान कोई मनुष्य अपने घर में प्रवेश नहीं करने देता है, तैसेही दुर्जन मनुष्य यदि विद्यादि गुण-कर संयुक्त होवे तो भी उसकी संगति कोई पसंद करता नहीं है.

“ दुर्जन काँटे जैसे होते हैं ”

खलानां कंटकानां च, द्विविधैव प्रतिक्रिया ॥

उपानह् मुग्ध भंगो वा । दूरनो वापि वर्जनम् ॥ ३४ ॥

अर्थ:—इस जगत में दुर्जन और काँटे दोनों ममान ( तुल्य ) होते हैं. इसलिये जिस प्रकार जहाँ काँटे बिखरे हों वहाँ पगार्वी से उनका मुग्ध भंग कर मनुष्यों जाते हैं तैसेही मज्जन पुरुष सज्जनातामि उसे सज्जन बनाते हैं या दुर्जन से दूर ही रहते हैं.

“ दुर्जन पे किया उपकार भी दुःख प्रद होता है ”

उपकारोपि नीचानां, मपकारोहि जायते ॥

पयःपानं भुजंगानां । केवलं विष वर्धनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ:—जैसे सर्प को पाया हुआ दुध विष रूप बन जाता है, तैसेही दुर्जन मनुष्यपर किया हुआ उपकार भी दुःख दाता हो जाता है.

“ दुर्जन, सर्प से भी बुरा होता है ”

सर्प दुर्जनयोर्मध्ये । वरं सर्पों न दुर्जनः ॥

सर्पों दशति कालेन । दुर्जनस्तु पदे पदे ॥ ३६ ॥

अर्थ:—दुर्जन और सर्प में बड़ा जबर अन्तर है. सर्प तो कद

ने दंश करता है और दुर्जन हस्वक्त दृःखदेनेरूप दंश करताही  
हता है. इसलिये सर्प से भी दुर्जन बहुत बुरा है. तथाचः—

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः । सर्पात् क्रूरतरः खलः ॥

मंत्रेण शाम्यते सर्पो । न खलः शाम्यते कदा ॥ ३७ ॥

अर्थः—सर्प और दुर्जन दोनों ही क्रूर खराबही होते  
हैं. किन्तु फरक इतना होता है कि सर्प का जेहर तो मंत्र  
में उत्तर जाता है किन्तु दुर्जन के हृदय में ग्हा द्वेष रूप जेहर  
किसीमी उपाय से दूर होता नहीं है.

“ दुर्जन बुरे से भी बुरा होता है ”

नक्षकस्य विषं दंते । मक्षिका या विषं मुग्धे ॥

वृश्चिकस्य विषं पुच्छे । सर्वांगे दुर्जनो विषम् ॥ ३८ ॥

अर्थः—सर्प के दाढ़ में जेहर होता है, मधमक्खी के मस्तक  
में जेहर होता है. विच्छु के पूंछ [ काँटे ] में जेहर होता है.  
और दुर्जन के रोंम २ में अर्थात् सब शरीर में जेहर होता है.  
इसलिये दुर्जन सबसे बुरा होता है.

“ छे का विश्वास नहीं करना ”

नदीनां च नग्नि नांच । शृंगिणां शम्भ्र पाणिनाम् ॥

विश्वासा नैव कर्त्तव्यः । स्त्रीषु राज कुलेषु च ॥ ३९ ॥

अर्थः—१ पानी से भरी नदीका, २ नाखूनवाले पशु पक्षीका,

३ सींगवाले पशु का, ४ जिसके हाथमें तरवारादि शस्त्र हो ऐसे मनुष्यका, ५ स्त्री का और ६ राजघराने वालेका. इन छे का विश्वास कभी नहीं करना.

“ छे की संगत नहीं करना ”

श्वरं श्वानं गजं मतं । रंडांच बहु भापिणीम् ॥

राज पुत्रं कुमित्रं च । दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ:—१ गद्धा, २ कुत्ता, ३ मदान्मस्त-हाथी, ४ बहुत बोलने वाली-विधवा स्त्री, ५ राजपुत्र और ६ दुर्जन मनुष्य. इन छे ही को दूर से ही त्याग देना चाहिये.

“ तीनोंका संचित मालं दूसरे हर लेते हैं ”

पिपीलिकार्जितं धान्यं । मक्षिका संचिनं मधुः ॥

लुब्धेन सञ्चितं द्रव्यं । समूलं च विनश्यति ॥ ४१ ॥

अर्थ:—चींटियों ने संग्रह किया धान्य को तीतरादि खा जाते हैं. मधु मक्खीने संग्रह किया मद्य ( सेहत ) को भीलादि और लोभीयों का उपार्जन किया द्रव्य राज चोरादि हैं. वक्त पर तीनों का अकाल मृत्यु भी हो जाता है.

“ पांचों जकार को संतोषित करना

जामाता जठरं जाया । जात वेदा जल

पूरिता नैव पृथ्यते । जकारा पंच ३ ४ ५ ६ ७

अर्थ:—१ जमाई, २ जठरामि-क्षुधा, ३ जाया-खी, ४ जातवेदा  
अग्नि और ५ जलाशय-समुद्र, इन पांच ' ज ' नाम के वालोंका  
उद्गर्षण कोई नहीं कर सकता है।

“ अच्छे पदार्थ थोड़ेही होते हैं ”

शैले शैले न माणिक्यं । मौक्तिकं न गजे गजे ॥  
साधवो नहि सर्वत्र । चंदनं न चने चने ॥ ४३ ॥

अर्थ:—सभी पर्वतों में माणिक्य की खान नहीं होती है, मर्ची हस्ति  
शों के मन्तकमें मोति उत्पन्न नहीं होते हैं, और मर्ची जंगल में चंदनके  
वृक्ष नहीं होने हैं। तैसेही साधु (सत्पुरुष) भी सर्वस्थान नहीं होते हैं।

“ दश मकार चंचल होते हैं ”

मनो मधुकरो मेघो । मानिनी मदनो मरुत् ॥

मा मदो मर्कटो मत्स्यो । मकारा दश चंचलाः ॥४४॥

अर्थ:—१ मन, २ भ्रमर, ३ मेघ-बदल, ४ स्त्री, ५ लंपट-पुरुष,  
६ मरुत-हवा, ७ मा चपला-लक्ष्मी ८ मद-अभिमान, ९ मर्कट-  
बंदर, और १० मत्स्य-मच्छ। ये १० बड़े चंचल अस्थिर स्वभाव  
वाले होते हैं।

“ नव काम गुप्त रखना ”

आयुर्विदां गृहच्छिद्रं । मंत्र भेषज मैथुनम् ॥

दानं मानापमानं च, नव गोप्यानि कारयेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ:— १ अपना आयुष्य, २ घर का धन, ३ घर के मनुष्यके छिद्र [ दुर्गुण ] ४ मंत्र, ५ औषध, ६ मेथुन की बातें, ७ दान-दिया हो सो, ८ अपने मुंहमें अपने गुन, ९ अपना अपमान किसीने किया सो, यह ९, काम छिपाकर रखना.

“ छे लक्षण से नाकार सज्ञना ”

मौनं काल विलम्बश्च । प्रयाणं भूमि दशनम् ॥  
सक्रोधान्य मुखे वार्ता । नकार-पट्विधः स्मृतः ॥४६॥  
अर्थ:— १ मौन धारण करे—उत्तर नहीं दे, २ उत्तर देने में विलम्ब करे कि-मे निचारके कहुंगा, ३ उठ कर चला जावे, ४ नीचे भूमि तरफ दृष्टि कर बैठा रहे, ५ क्रोध करने लगे और ६ दूसरे से बातों करने लग जावे, इन छे लक्षणों से समझना कि यह काम करने का इसका मन नहीं है.

“ धर्म और कीर्ति सिवाय सब अस्थिर है ”

अस्थिरं जीवितं लोके । अस्थिरं धन यौवने ॥  
अस्थिरा पुत्र दाराश्च । धर्मः कीर्ति द्वयं स्थिरम् ॥४७॥  
अर्थ:— इस लोक में—आयुष्य, धन, यौवन, स्त्री और पुत्र, यह सबही अस्थिर-जाशवान है, केवल धर्म और कीर्ति ही स्थिर है.

भाग्य बिना वस्तु मिलना मुशकिल

पदे पदे निधानानि । योजने रस कृपिका ॥

भाग्य हीना न पश्यन्ति । चह रत्ना वसुंधरा ॥ ४८॥

( श्रीउपदेश-घटक )

—इस वसुंधरा-रत्नगर्भा पृथ्वीमें पग पग पर द्रव्य का न है, योजन योजनपर रस कृषिका ( कर्मिया करने की ) है, किन्तु जिनके भाग्योदय नहीं हुए हैं उनके देखने में ही आती है..

आठ जने दूसरे के दुःख को नहीं जानते

राजा रामा यमो वन्हिः । प्राहुणो वाल याचकौ ॥  
पर दुःखं न जानानि । अष्टमां ग्राम कंटकः ॥४०॥  
अर्थः—१ राजा, २ स्त्री, ३ यम, ४ अग्नि, ५ मेहमान, ६ बालक, ७ याचक, और ८ कौटवाल अथवा निंदक, चुगलखोर वगैरे. यह ८ अपना मतलब साधने में दूसरे के दुःख का खियाल नहीं करते हैं.

नव वस्तु स्वयं दुःखसह दूसरे को सूखी करती है.

इक्षु दंडा स्तिलाः शृद्राः । कांताः काघन मंदिनी ॥  
चंदनं दधि ताम्बूलं । मर्दनं गुण वर्धनम् ॥ ५० ॥  
अर्थः—१ इक्षु, सांठा-स्वयं पिलाकर अन्यको मिष्ट रस देता है. २ तिल-स्वयं पिलाकर अन्यको तेल देता है, ३ शृद्र-कृषी-शीतला तापादि महा कष्टसह कर जगत् को धान्यादि उत्पन्न कर देते हैं. ४ मीयों अनेक कष्टसह कुटुम्बियों का पोषण करती है, ५ सुवर्ण कुपिटा कर अन्यके शृंगार, काममें आतागता है. ६ पृथ्वी शीत

खोदनादि का कष्टसह कर अनेक पदार्थ उत्पन्न कर देती है. ७ चंदन; घिसनेसे जलने से सुगंधही देता है, ८ दही का मंथन करने से मक्खन देता है. और ९ ताम्बूल-पान चाबनेवाले का मुख मंडन करता है. यों यह नवही स्वयं कष्टसह कर दूसरे को सुख देते हैं. दूसरा अर्थ—इन नवका ज्यों ज्यों अधिक मर्दन किया जाता है—कष्ट दिया जाता है—त्यों त्यों इनमें अधिक २ गुण वृद्धि पाता है.

“ कहां क्या नहीं होता? ”

नस्कर स्य कुतो धर्मो । दुर्जनस्य कुनः क्षमा ॥

वैश्यानांच कुतः स्नेहः। कुतः सत्यं च कामिनाम् ॥ ५१ ॥

अर्थ:—चोर के हृदयमें धर्म बुद्धि, दुर्जन के हृदय में क्षमा. वैश्याके हृदय में सच्चा प्रेम और कामी के हृदय में सत्य, नहीं होता है.

“ श्रोता विन वक्ता क्या काम के ”

किं करिष्यन्ति वक्तारः । श्रोता यत्र न विद्यते ॥

नग्न क्षपण के देखे । रजकः किं करिष्यन्ति ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे जहां सब नग्न—लंगोटा लगाने वाले ही रहते हों तो वहां धोबी गया क्या काम का ? अर्थात् कुछ काम का नहीं. तैसे ही जहां मुननेवाले ही नहीं हों तो वहां पण्डित वक्ता भी क्या काम का ? अर्थात्-निकम्मा है.

“अन्याय का धन टिकता नहीं.”

अन्यायोपार्जनं द्रव्यं । दश वर्षाणि तिष्ठति ॥

याते चैकादशे वर्षे । समूलं च विनश्यति ॥५३॥

अर्थ—अन्याय से उपार्जन किया धन, ज्यादासे ज्यादा दश वर्ष टिक सकता है, कदाचित् इगदारेय वर्ष रह जाय तो वह पहिले के धन को भी साथ में लेकर चला जाता है.

“उत्कृष्ट-तप-सुख-व्याधी और धर्म.”

ध्रमा तुल्यं तपो नास्ति । न संतोपात्परं सुखम् ॥

न च तृष्णा परो व्याधि । न च धर्मो दया परः ॥५४॥

अर्थ:— ध्रमा के समान दूसरा कोई तप नहीं, संतोष के जैसा दूसरा कोई सुख नहीं, तृष्णाके जैसा दूसरा कोई रोग नहीं और दया के समान दूसरा कोई धर्म नहीं.

“नीच को नीच और उंच को उंच इच्छा”

मक्षिका व्रण मिच्छन्ति । धन मिच्छन्ति पार्थिवाः ॥

नीचाः कलह मिच्छन्ति । शान्ति मिच्छन्ति साधवः ॥५५॥

अर्थ:—मक्खीयों पक गुम्बडा हंडती फिरती है, राजा धन तथा राज हंडता फिरता है, नीच मनुष्य झगड़-झगड़े, हंडता है उंच साधु महात्मा औ शान्ति को हंडते हैं.



## “ सुपात्र दानका फल ”

[ श्लोक-उपज्ञानि वृत्तम् ]

सुपात्र दानाश्च भवेद्वनाढ्यो । धन प्रभावेण करोति पुण्यं ॥ पुण्य प्रभावात् सुरलोक वासी । पुन र्धनाढ्यः पुनरेव भोगी ॥ ५६ ॥

अर्थ:—सुपात्र में दान के देने से धन की प्राप्ति होती है, उस धन से पुण्य करनेकी इच्छा होती है, पुण्य के प्रभाव से देव लोक में जाना होता है, और वहां से मर कर पुनः मनुष्य लोक में धनाढ्य का पुत्र हो पूर्ण सुख का भोक्ता बनता है, इसलिये अटो सुखार्थी जनो ! सुपात्र में दान दीजिये.

## “ कुपात्र दान का फल ”

कुपात्र दानाच्च भवेदरिद्रो । दारिद्र्य दोषेण करोति पापम् ॥

पाप प्रभावाच्च रकं प्रयाति।पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी॥५७  
अर्थ:—कुपात्र में दान देने से दरिद्रता की प्राप्ति होती है, उस दारिद्र के प्रभाव से पुनः पाप करता है, और पाप के प्रभाव से मरकर नर्क में जाता है, वहां से निकल कर पुनः दरिद्री के कुल में जन्म लेता है और पुनः पापी बनता है.

“ जीवे वहां तक हाथ न आवे ”

सर्पस्य रत्ने कृपणस्य वित्तो।सत्याः कुचे केसरिणाश्चकेणे

मानोन्नतानां शरणा गते चामृतो भवे दान्य करः प्रचारः  
 अर्थः—जीते सर्ष की मणि, कृपण का धन, सती स्त्री के पयोधर,  
 मान्यवंत का अभिमानिका शरणागत. ये वस्तु उन के मरे बाद ही  
 दुसरे ले सकते हैं.

“बुद्धिका विकास पाँच स्थानपर होता है ”

देशाटन पण्डित मित्रताचावारांगना राजसभा प्रवेशः  
 अनेक शास्त्रार्थ विलोकनंचाचातुर्य मूलानि भवन्ति पंच  
 अर्थः—१ अनेक देशों में फिरनेसे, २ पण्डितों से मित्रता करने  
 से, ३ वेश्या के ठगने की कला जानने से, ४ राजा, पंच, साधु  
 की सभा में जाने से और ५ अनेक शास्त्रों का अर्थानुप्रेक्षा करने  
 से, कम बुद्धि मनुष्य भी चतुर-होशार हो जाता है.

“स्नेही के संयोग से हर्ष वृद्धि होती है ”

अर्थो नराणां पति रंगनानां । वर्षा नदीना मृतराट्  
 तरुणांम् ।

स्वधर्मचारी नृपतिः प्रजानां, गनं गनं यौवन मानयन्ति ॥

अर्थः—बृद्धावस्था को प्राप्त हुआ मनुष्य अचानक द्रव्य की  
 प्राप्ति हो जानेसे युवान के जैसा बन जाता है, परदेशी पति के वियोग  
 से बृद्धावस्था दुर्बल वनी स्त्री पति के आनेसे युवति बन जाती है.  
 सुखी हुई नदी वर्षाद क्रतु में युवा-वेगवती बन जाती है, पत्र रहित

वृक्षो वसंत ऋतुं मे नवपल्लवो हरिणो जन जाते हैं, और धर्मात्मा राजा के संयोग से प्रजा जन भी नववर्षावन रूप देवते हैं.

“ सम्पूर्ण ताका येही चिन्ह है कि झलके नहीं.”

सम्पूर्णं कुम्भो न करोति शब्द ।

मर्धो घटो घोष सुपेति नूनम् ॥

विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वम् ।

गुणोर्विहिना बहु जल्पयन्ति ॥ ६१ ॥

अर्थ—जैसे भरा हुआ घड़ा झलकता भी नहीं है और अवांज भी नहीं करता है, तैसे कुलवंत मनुष्य बड़ा विद्वान होकर भी गर्व-अहंकार करता नहीं है; और जैसे अधभरा घड़ा टग २ शब्द करता है और पानी को उछाल देता है, तैसे कुलहीन गुण हीन मनुष्य भी बड़े अहंकारी और बकवाद करने वाले होते हैं.

“किसका किससे नाश होता है?

रूपं जरा सर्वं सुखानि तृष्णा। ग्लान्दपु सेवा पुरुषा भिमानम् ॥ यांचा गुरुत्वं गुणमात्म पूजा। चिन्ताचलं हंत्य दयांच लक्ष्मीम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—वृद्धावस्था रूप का नाश करती है, तृष्णा सुख का नाश करती है, दुष्ट जनों की सेवा प्राप्त मान का नाश करती है, मंगने से बड़ पन का नाश होता है, अपने गुणों की अपने मुखमें प्रशंसा

करने से गुणका नाश होता है. निकम्मी चिन्ता करने में बलका नाश करती है, और लक्ष्मी दयाका नाश करती है!!

“ काम बिगड़े बाद चिन्ता निकम्मी ”

निर्वाण दीपे किमु तैल दानं । चौर गते वा किमु  
सावधानम् ॥ ययोगते किं यन्तिता चिन्तासः । पयोगते  
किं बलु सेतु यंधः ॥ ६३ ॥

अर्थ-दीपक बुझगये बाद तैल डालना निकम्मा, चोर धन लेगये बाद जागरण करना निकम्मा. वृद्धावस्था प्राप्त हुए ली संभोग की इच्छा करना निकम्मी. और बर्षादिवर्ष गये बाद पान्थ बान्धनी निकम्मी ( व्यर्थ ) होती है .

“ छे जने विना अग्नि जलते हे ”

कुग्राम वासः कुजनस्य सेवा ।  
कुभोजनं क्रोध मुख्याच भार्या ॥  
मूर्खश्च पुत्रो विधवाच कन्या ।  
विनाग्नि नावै दहते शरीरम् ॥ ६४ ॥

अर्थः—१ खराब ग्राम में रहने वाला, २ नीच मनुष्य की सेवा करने वाला, ३ अमनोज्ञ भोजन खाने वाला, ४ रीसालु भार्या का पति, ५ मूर्ख पुत्र का पिता और ६ विधवा पुत्री के मा बाप, ये छह जने विना अंगार से हमेदा जलते रहते हैं.

## “ साधु का कुटुंब ”

( श्लोक-शांख्य विनीतमतम् )

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी । आंनि शिरं गहिनी ॥  
सत्यं सूतरयं दया च भगिनी ॥ भ्राना मनः संयमः ॥  
शय्या भूमिनलं दिशोपि वसनां ज्ञानामृत भोजन, मे ते  
यस्य कुटुम्बिनो वद सखे ॥ कस्माद् भयं योगिनः ॥ ६५ ॥

अर्थः—धैर्यरूप पिता, क्षमारूपी माता, शान्ति रूप निरंतर संगमं रहनेवाली प्रिय पत्नी [ स्त्री ] सत्य रूप पुत्रवधु, दया रूप बहीन; मन निग्रह रूप भाई है. और पृथ्वी ही जिन के शयन करने मुखद जैसा है. दशों दिशा रूपी वस्त्र जिन के पहने को है. और ज्ञान रूप अमृत भोजन संदेव करते हैं. कहो मित्रों! इतना जिनके कुटुम्ब है उन को किमका भय है. अर्थात् किसीकाभी नहीं ये सदैव आनन्दमें रहते हैं.

## “ किस के विना क्या नहीं शोभे ”

राज्यं निःसचिवं गत प्रहरणं सैन्यं विनेत्रं मुखं ॥  
वर्षा निर्जलदा धनी च कृपणा । भोज्यं तथा ज्यं विना ॥  
दुःशिला गृहिणी सुहृन्न कृतिमान् राजा प्रतापो जित्तः  
शिष्यो भक्ति विवर्जितो यन तथा देहश्च धर्म विना ॥ ६६ ॥

अर्थः—१ प्रधान विना का राज, २ शस्त्र विना की सेना, ४ आँसू विना मुख ५ वर्षाद विना वर्षा ऋतु, ६ कृपणता युक्त धनेश्वरी, ७ धृत विना का भोजन, ८ सदाचार विना की स्त्री,

६ गुण मूलने वाला मित्र, १० प्रताप विना का राजा, ११ भक्ति विना के शिष्य और १२ धर्म विना का शरीर. इन सर्वा की शोभा किस प्रकार से भी होती-नहीं है.

“धर्म विना मनुष्य की शोभा नहीं.”

निर्दतः करटी हयौगत ज व श्रंद्रं विना शर्वरी ॥  
निर्गंधं कुसुमं सरोगत जलं, छाया विहीनस्तनू ॥  
भोज्यं निर्लवणं सुतो गतगुण श्ररिघ्न होनो यति-।  
निंदेघ भवनं नरजति सदा धर्म विना मानवः ॥ ६७ ॥

अर्थ:—१ दाँत विना हाथी, २ चालविना घोडा, ३ चंद्र विना रात्रि, ४ सुगंध विना फूल, ५ पाणी विना तलाव, ६ छाया विना वृक्ष, ७ निमक विना भोजन, ८ गुण विना माधु, १० देव विना मंदीर, जिस प्रकार शोभता नहीं है, उसही प्रकार धर्म विन मनुष्य भी शोभता नहीं है.

“किस विना किसकी शोभा नहीं”

प्रीति ईष्टि विना सुखं धन विना गेहं च भार्या विना ।  
विप्रा वेद विना यनी गुण विना राजा च सैन्यं विना ॥  
गूरःशस्त्र विना म्त्रियः पति विना पूजा विना दैयता ॥  
सर्वं तच्च न शोभते किम परं देहश्च जीवं विना ॥ ६८ ॥

अर्थ:—१ आँसू मिले विना प्रीति, २ धन विना सुख,

३ स्त्री विना घर, ४ वेदपाठ विना ब्राह्मण, ५ गुण विना माधु  
६ मना विना का राजा, ७ हथियार विना मूत्रट ८ भक्ति विना  
का शिष्य, ओर ९ धर्म विना कर शरीर शोभता नहीं है.

### “वृद्धावस्था की स्थिति”

गात्रं संकुचिनं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दंतावली ।  
दृष्टिर्नश्यति वर्द्धते धधिरता वक्त्रंच लालायते ॥  
वाक्यं नैव करोति घान्धवजनः पत्नीन शुश्रूषते ॥  
धिक कष्टं जरया भिभूत पूरुषं पुत्रोऽप्य व ज्ञायते ॥  
अर्थः—वृद्धावस्थामें शरीर संकोचित होजाता है. चाल बाँकी  
होजाती है, दाँत नष्ट हो जाते हैं, आँखों से अच्छा दीखता  
नहीं है. दान से पूरा सुना जाता नहीं है. मुँह में से लाल टप  
करने लग जाती है. भाइ बन्ध कहना नहीं मानते, मिय पत्नी भी  
सेवा नहीं करती ओर पुत्र भी अवज्ञा करने लग जाते हैं.  
इसलिये धिक्कार ह वृद्धावस्थाको.

“दैव के कोप की वक्त बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है”

( श्लोक अनुव्य )

धातुर्वादे तथा सृते । यश्चिणि मंत्र साधने ॥  
परदारं तथा चारे । दैवे रुपे मतिर्भवत् ॥ ७० ॥

अर्थः—जब मनुष्यके अशुभ कर्मोदय होना हैं तब सुवर्ण सिद्धि  
आदि कीनीया साधन करने का मन होता हैं. परखी गमन

कृत्वा चहाता हैं चोरी करने प्रवृत्त होता है, यह पापोदय के लक्षण जानना.

### “ पाणी के गुण ”

अजीर्णं भेषजं वारि, जीर्णं वारि बल प्रदम् ॥  
भोजने चामूर्तं वारि । भोजनांते विष प्रदम् ॥ ७१ ॥  
अर्थः—अजीर्ण पर गरम पाणी औषध तुल्य गुण करता है, निरोगे कौठमें पाणी पीने से बल वृद्धी होती है, भोजन करते बीच में पाणी पीना सो अमृत तुल्य है. भोजन किये बाद पानी विष तुल्य होता है.

“ बुरा काम करने से, नहीं करना ही अच्छा ”

( श्लोक-शिवराणी वृत्तम् )

वरं मौनं कार्यं, नच वचनं मुक्तं यदि नृतं ।  
वरं क्लीयं पुसां, नच परं कलत्राभि गमनम् ॥  
वरं प्राणं त्यागो, नच पिशुनताया मभिरुचि ॥  
वरं भिक्षाशिक्षं, नच परधना स्वादनं सुखंम् ॥७२॥  
अर्थ—शूद्र बोलने से तो मौनस्थ रहनाही अच्छा है, परकीके गमन करने से नपुंसक ( नामर्द ) रहनाही अच्छा है. चुंगली आदि लवाडी करके उदर पूर्ण करने से तो मरनाही अच्छा है, और दूसरे के धनकी आशा करने से तो भीक्षोपजीवी होनाही अच्छा है.



## “धर्मकाममें विलम्ब नहीं करना”

( श्लोक शाकुन्तलिकादिनि )

यावत् स्वस्थामिदं कलेवर गृहं यावज्जरा दूरता ।  
यावच्चेन्द्रिय शक्तिर प्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः ।  
आत्म श्रेयसि नावदेव विदुषा कार्यः प्रयतो महान् ।  
संदीप्त भवने च कृप ग्वननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥७३॥

अर्थ—जहांतक शरीर सुखमें है, जहांतक वृद्धावस्था प्राप्त नहीं हुई है, जहांतक इन्द्रियों की शक्ति कम नहीं पड़ी है, और जहांतक आयुष्य का क्षय नहीं हुआ है. वहांतक अहो मुझ पुरुष ! आत्मश्रेयका धर्म कार्य शीघ्रता से करले. क्योंकि जिस प्रकार घरमें अंगार लगे बाद उसे बुझाने को पाणीके लिये कृपा खोदना निरर्थक है, तेसेही शारीरिक शक्ति नाश हुए बाद धर्म होना भी असंभव है.

### “ कौनसा देश त्यागने योग्य ? ”

छेदश्चन्दन आम्र चम्पक वने रक्षापि शाम्बोटके ।  
हिंसा हंस मयूर कोकिल फुले काकेशु नित्यादरः ॥  
मातंगेन सर क्रयः समतुला कर्पूर कार्पासयो  
रेषायत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः ॥७४॥

अर्थ—जिस देश में चन्दन, आम्र और चम्पा के उत्तम वृक्षों का छेदनकर, बबूल धूवर जैसे नीच वृक्षोंका होता हो. जहां हंस, मयूर, कोकिला जैसे उत्तम

नाशकर कौवे घुषु जैसे नाच पक्षियोंका पोषण होता हो। जहां हाथी और गधे की एक ही किंमत होती हो। जहां कपूर और कृपास को समान मानने हों। अर्थात् मद्रुणी और दुर्गुणी की परीक्षा नहो, मद्रुणी का अपमान और दुर्गुणी का सम्मान होता हो। ऐसे देश को दूरसेही नमस्कार करना। अर्थात् दूरसेही त्याग देना अच्छा है।

“ परस्पर एक से एक की एक शोभा है। ”

मणिना बलयं बलयेन मणि, मणिना बलयेन विभानि  
करः । कविना च विभुर्विना च कविः कविना विभुना च  
विभानि सभा ॥ ७५ ॥ शशीना च निशा निशया च  
शशी, शशिना निशया च विभानि सभाः । पयसा कमले  
कमले न पयः, पयसा कमलेन विभानि सरः ॥ ७६ ॥

अर्थः— मणि में कंकण की शोभा है, और कंकण से मणिकी शोभा है मणि और कंकण दोनों कर हाथ शोभता है। कवी में राजा की शोभा है और राजा से कवी की शोभा है कवी और राजा दोनों कर मन्ना की शोभा है चंद्रमासे रात्रि की शोभा है और रात्रि से चन्द्रमाकी शोभा है चन्द्रमा और रात्रि दोनोंकर आकाश की शोभा है। पाणी से कमल को शोभा है और कमल से पाणी की शोभा है पाणी और कमल दोनों कर तलावकी शोभा है। यों परस्पर एक-एक से एक-एक अच्छे लगते हैं। अच्छेसेही माम की

शोभा होती है.

## “ प्राप्त वस्तु की सफलता ”

( श्लोक उपजन्ता वृत्तम् )

बुद्धेफलं तत्त्व विचारणं च । देहस्यसारं व्रत धारणं च ॥  
अर्थस्य सारं किल पात्र दानं । वाचःफलं प्रीतिकरं  
नराणाम् ॥ ७७ ॥

अर्थः—बुद्धि प्राप्त होने का सार है कि तत्त्वातत्त्व का विचार करना. मनुष्य शरीर प्राप्त करने का सार है कि मध्यक्त्व पूर्वक व्रतों का स्वीकार करना, धन प्राप्त करने का सार है कि सुपात्रों में दान देना और वचन प्राप्त करनेका सार है कि सर्वा में प्रीति कर वचन बोलना.

## “ ज्ञानी के १० लक्षण ”

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वं । क्षमा दया सर्व जन  
प्रिय त्वम् ॥

निलोभ दाता भय शोक हर्ता । जानिनराणां दश  
लक्षणानि ॥ ७८ ॥

अर्थः—१ क्रोध रहित, २ वैराग्यवंत, ३ जितेन्द्रिय, ४ क्षमावान, ५ दयालु, ६ सभी को प्रियकारी. ७ निलोभी, ८ दातार. ९-१० भय और शोक दूर करने वाला, यह १० लक्षण जिनमें हो सो ज्ञानी.

## “ ज्ञान दान की महिमा ”

[ श्लोक मालिनी वृत्तम् ]

सगजरथ तुरङ्गं गोशानं भूमिदानं, कनकसूचिर पात्रं  
मेदिनीं सागरांतां ॥

उभय कुल विशुद्धं कोटि कन्या प्रदानं, न भवति  
श्वलु तुल्यं ज्ञानदानेः समानम् ॥ ७९ ॥

अर्थः—सैकडो-हाथी घोड़े रथ गावों पृथ्वी (सैत ) सुवर्ण  
पात्र समुद्रके अन्त तक पृथ्वी का राज, निर्मल जानि कुल की  
श्रीड कन्या, इन सभी का दान कर देताभी ज्ञान दान के तुल्य  
न आवे. सब में श्रेष्ठ ज्ञान दान है.

## “ दारिद्र की प्रशंसा ”

( गाय-आर्या वृत्तम्. )

दीसन्ति जोग सिद्धा । अंजन सिद्धाय केड् दीसन्ति ॥  
दारिद्र जोग सिद्धा । पास विद्विया न दिसन्ति ॥ ८० ॥

( श्लोक-अनुष्टुप वृत्तम् )

भो दारिद्र नमस्तुभ्यं । सिद्धो हं तव दर्शनात् ॥  
अहं सर्वांश्च पश्यामि । नमां पश्यति कश्चन ॥ ८१ ॥

अर्थः—दारिद्र कहता है कि—जो योग का साधन कर  
सिद्ध पुरुष बने हैं, वेभी देखनेमें आते हैं. और अंजन सिद्धों से  
अदृश्य बने हैं, किसी प्रयोग से वेभी देखने में आजाते हैं.

किंतु दरिद्री मनुष्य यदि दातार के नर्जीक बैठे हो तोभी वह उसे देख सकता नहीं है. ॥ ८० ॥ इस लिये हे दरिद्र मैं तुझे नमस्कार करता हूँ क्यों कि मैं तेरे दर्शन से ( प्रताप से ) सिद्ध के समान अदृश्य बन गया हूँ, कि मुझे कोई देखही नहीं सकता ॥ ८१ ॥

“ समान कोण २ ”

( काव्यम् )

पुत्राय सीसाय समं विभत्ता । रिसिणाय देवाय  
समं विभत्ता ॥  
मुग्धा तिरिक्त्वाय समं विभत्ता । मुआ दरिदाय  
समं विभत्ता ॥ ८२ ॥

अर्थः—पुष्ट और शिष्य दोनों सरीखे, ऋषि और देव दोनों सरीखे, मूर्ख और तिरिक् ( पशु ) दोनों सरीखे, मुग्धा और दरिद्री दोनों सरीखे.

“ जो प्रार्थना भंग करे सो सर्व सें तुच्छ ”

( गाथा-आर्या वृत्तम् )

नण लहुयं तुस लहुयंच, ॥ नण तुस लहुयं च पत्थणा  
लहुयं ॥ तत्तोवि सोय लहु ओ । पत्थणा भंगो  
कओ जेण ॥ ८३ ॥

अर्थः—मनसे तुच्छ वृण होता है. उसमें भी तुच्छ तुश होता है. और वृण तुश से भंगने वाला तुच्छ होता है. किन्तु जो

शक्तिमान् हो मंगनेवाले की प्रार्थना करता है वह उस मांगनेवालेमें  
मां तुच्छ होता है !

परपत्न्या पवित्रिं । माजणणी ! जणय एरिसं पुत्रं ॥  
उये विमार्धरिज्जयं । पत्थण भंगो कओजेण ॥ ८४ ॥

अर्थ:—अहो मातेश्वरी दूसरेके पास याचना करनेवाले पुत्र को  
जन्मना नहीं, कदाचित ऐसे भी पुत्र को जन्म दे तो तेरी इच्छा  
किन्तु प्रार्थना का भंग करने वाला-भंगत को नकारा कहने वाले पुत्र,  
घा तो तू पेट में धारण ही मत करना अर्थात् जन्म नहीं देना.

“ विधाता को उपालंभ ”

( श्लोक-मालिनी वृत्तम् )

शशिनि खलु कलंकं कंटकं पद्मनाले ।

जलाधि-जलम पेयं पण्डिते निर्धनत्वम् ॥

दयित जन वियोगो दुर्भगत्यं स्वरूपे ।

धनपति कृपणत्वं रत्नदोषी विधाना ॥ ८५ ॥

अर्थ:—अहो विधाता तैने यह क्या किया ? चन्द्रमा को  
कलंकित कर दिया, कमलकी नाल को काँटे लगादिये, समुद्र का  
पानी सारा कर दिया, विद्वानको निर्धन रत्न दिये, रूपवती स्त्री को  
विधवा कर दी, प्रियजनको वियोगी बनाया, सूरूपवानको दुर्भागी  
बनाया, और धनेश्वरी को कृपण बना दिया विधो के प्रतापसे मां  
रत्नो भी संतोसतोप होते हैं.

## “ सात दुर्व्यसन ”

( श्लोक- उपाजाति वृत्तम. )

द्युतं मांसं च सुराच वेद्या, पापद्धि चोरी परदारः  
संघा । एतानि सप्तव्यसनानी लोके, घोराति घोरं नरकं  
ददन्ति ॥ ८६ ॥

अर्थः—१ जुवा खेलना, २ मांस का खाना, ३ मदिरा  
का पीना, ४ वेद्यागमन करना, ५ मिकार खेलना, ६ चोरी का  
करना और ७ परखी गमन. इन सातों दुर्व्यसनों के सेवन करने  
वाले मर्कर अति दारुण दुःखवाली नरक में जाते हैं ॥

## “ रात्रि भोजन रोग कर्ता ”

( श्लोक अनुष्टुप )

मेघां पिपीलिका हान्ति । यूका कुर्याज्जलोदरम् ॥  
मक्षिका कुग्ने घान्ति । कुष्ठ रोगं च कोलिकः ॥ ८७ ॥

अर्थः—रात को भोजन करने से-जो चिंटी खाने में आ  
जावे तो बुद्धि का नाश होवे. जो यूका ( ज्यू ) खाने में आजावे  
तो जलोदर का रोग हो जावे. मक्खी खाने में आजावे तो  
घमन हो जावे, और जो मकड़ी खाने में आजावे तो कुष्ठ-कोष्ठ  
रोग उत्पन्न हो जावे.

### “ व्यर्थ काम ”

वृथा वृष्टी समुद्रेषु । वृथा तृत्पेषु भोजनम् ॥  
 वृथा दानं घनाढ्येषु । वृथा दीपां दिवापिच ॥ ८८ ॥  
 अर्थः—समुद्र में वर्षाद वर्षना व्यर्थ, तप्त ( धोपे हुए ) को भोजन  
 करना व्यर्थ, धनेश्वरी को दान देना व्यर्थ और दिनको दीपक  
 जलाना व्यर्थ.

### ‘ ब्राह्मण के लक्षण ’

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म । ब्रह्म चैन्द्रिय नियमः ॥  
 सर्वं भूते दया ब्रह्म । एतद् ब्राह्मण लक्षणम् ॥ ८९ ॥  
 अर्थः—जो मत्स्य ही बोले, तपश्चर्या करे, पांचों इन्द्रियका नियम  
 करे-नियंत्रण रखे और सब जीवोंपर दया करे, सोही ब्राह्मण होता है.

### “ २७ व नाम की वस्तु होवे सो शहर ”

( श्लोक—शांडिल विक्रिज्जत वृत्तम् )

यापी यप्र विहार यणं यनितः । याग्मी यनं याटिका ॥  
 यथा ब्राह्मण यारि यादि विबुधावेष्टया यणिक याहिनो ।  
 विद्या वीर विवेक वित्त विनया । वाचांयमा यष्टिका  
 वस्त्रं वारग वाजी वेणर यरं । राज्य वाभिः शोभने ॥  
 अर्थ—१ बावडी, २ यप्र-किल्ला, ३ वर्गाचा ४ अठोर 'वर्ण'  
 केलोगां ५ वनिता-स्त्री, ६ वाचाल, ७ वन, ८ वाडी, ९ यष्टिका  
 १० ब्राह्मण, ११ वर्ग-पाणी, १२ चर्चा-वादी, १३ विबुद्ध



१४ वैश्या, १५ वनिक, १६ वाहिनी-नदी, १७ विद्यावंत, १८ वीरपुरुष, १९ विवेकी, २० वितेधन, २१ विनयवान, २२ वाचक-साधु, २३ वेल-बलियो, २४ वक्त्र, २५ वारण-हाथी, २६ वाजी-घोडा, और २७ वेशर-सञ्चर. वरं-यह २७ ही बर्णों के प्रथम अक्षर वाली जहां प्रधान बन्तु हो, वही शहर है.

‘ मर्यादमें रहने वालाही फते पावे ’

( श्लोक अनुष्टुप )

नक्रः स्वस्थान मासाद्य । गजेन्द्रमपि कर्षन्ति ॥

साधु प्रत्युत स्थानाच्छुनापि परि भूयते ॥ ११ ॥

अर्थ—मगर मच्छ स्वस्थान अर्थात् पानीमें रहकर हार्थी जैसे बड़े प्राणीका भी नाश कर सकता है, और जो वह स्वस्थान को छोड़ कर अर्थात् पानी बाहिर आजावे तो उसे कुत्ते जैसा भी मार सकता है. सारांश यह है कि हठी मर्याद में रह कर काम करने वालाही फते पा सकता है, मर्याद का उलंघन करने वाला वक्त पर अकाल में मारा जाता है.

“मर्याद भंग कर्त्ताके मित्र भी वैरी हो जाते हैं”

पद स्थितस्य पद्मस्य । मित्रे वरूण भास्करौ ॥

पदच्युतस्य तस्यैव । क्लेशदाह करौ युभौ ॥ १२ ॥

अर्थ—कमल पुष्प स्वस्थान मरौवर में रहता है उस वक्त उसके मित्र हवा और सूर्य दोनों ही मुखदाता होते हैं, और वही कमल जो

वस्थान त्याग कर जो पृथ्वी पर जा पड़े तो वेही मित्र उसे दुःख दता होजाते हैं. हवा उडा देती अर्थात् है और सूर्य सुका देता है.

“कितनी वस्तु स्वस्थान में ही अच्छी लगती है.”

राजा कूलवधूर्विप्रा । मंत्रिणश्च पर्याधराः ॥

स्थान भ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नग्वा नारः ॥९३॥

अर्थः—राजा, कूलवती स्त्री, ब्राह्मण, प्रधान, वर्षादः दांत, बाल, नख और मनुष्य. ये सब स्थान में ही अच्छे लगते हैं. स्थान भ्रष्ट हुए बने नहीं शोभी नहीं पाते हैं.

“ सारांश ग्रहण करो ”

( श्लोक उपजती वृत्तम् )

अनेक शास्त्रं बहु वेदिनव्य-मल्पश्च कालो घटपश्च  
विघ्नः ॥

यत्सार भूतं तदुपसितव्यं । हंसो यथा क्षीर  
भिवान्मुमध्यात् ॥ ९४ ॥

अर्थः—जगत् में शास्त्रों बहुत है, पढना भी बहुत हैं, किन्तु आयुष्य थोडा है और उस में भी विघन बहून आते हैं, इसलिये जैसे हंस के सम्मुख पाणी और दूध दोनों मिलाकर रख दे तो वह दुध २ पी जाता है और पाणी को छोड देता है, तैसेही शास्त्र पढकर सार २ ग्रहण कर लना और असार को छोड देना चाहिए.

“ क्रोध शरीर को भी जलाता है ”

क्रोधोहि शत्रु प्रथमो नराणां । देहस्थितो देह

शनाय ॥ यथास्थिनः काष्ठगतोहि वन्धिः । स एव  
वन्धिर्दहते शरीरं ॥ ९४ ॥

अर्थः—जैसे वांश के अंदर रही अभी वांश का नाश करती है,  
तैसेही शरीर में रही क्रोध रूप अभी शरीर को जलाती है-  
इसलिये क्रोध त्यागने सेही शांति प्राप्त होती है.

“ अच्छे की संगत से अच्छा ” वनता है.

यति व्रतीचपि पतिव्रता च । वीराश्च शूराश्च दया  
पराश्च ॥ त्यागीच भोगीच बहुश्रुताश्च । सुसंग  
मात्रेण दहन्ति पापम् ॥ ९६ ॥

अर्थः—जितेंद्रिय, व्रतधारी, पतिव्रता स्त्री, वीरपुरुष, शूर  
पुरुष, त्यागी पुरुष, और बहुत शास्त्र के पढ़े हुए. इनकी संगत  
करनेवाला भी उनके जैसाही गुनवान बन जाता है.

“ एक से दूसरे की शोभा होती है ”

( श्लोक वशात् नृत्त )

श्रुतेन बुद्धि र्व्यसनेन मुर्खता ।

मदेन नारी सलिलैर्निमग्ना ॥

निशा जशांकैः धृतिः समाधिना ।

नयेन चालंक्रियते नरेन्द्रता ॥ ९७ ॥

अर्थः—शास्त्र से बुद्धि, दुर्व्यसन से मूर्खता, मद से स्त्री,  
पाणी से नदी, चन्द्रमासे रात्रि. समाधि से धैर्यता. और न्याय

मे राजा गोभा पोता है.

“ सब धर्म सब गुरु सरीखे नहीं ”

( श्लोक-अनुपूप वृत्तम्. )

राजि वारण लोहानां । काष्ठ पापाण याससाम् ॥

नारी पुरुष तोयाना, मंनरं महदंतरम् ॥ १८ ॥

अर्थ:—घोड़े घोड़े में, हाथी हाथी में, लोह लोह में, लकड़ लकड़ में, पत्थर पत्थर में, वस्त्र वस्त्र में, पुरुष पुरुष में, पाणी पाणी में, और रात्रि दिन में, जितना अंतर होता है, तैसेही धर्म धर्म में, और साधु साधु में भी बड़ा अन्तर होता है. सब सरीखे नहीं होते हैं.

“ कितनीक वस्तुकी परिक्षा भी नहीं करना ”

नदीनां च कुलांनच । मुनीनां च महात्मनाम् ॥

परीक्षा नही कर्नव्या । स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥ १९ ॥

अर्थ:—नदी के मूलकी, साधु के कुल की, और स्त्री के दुश्चरितकी परिक्षा नहीं करना चाहिये. क्योंकि इसका परिणाम श्रेष्ठ नहीं.

“ पांच महा पापी ”

धर्म निन्दी पंक्ति भेदी । निद्रा छेदी निरर्थकः ।

कथा भंगी गुण द्वेषी । पंचै ते परमा धमाः ॥ १०० ॥

अर्थ:—१ धर्म की निंदा करने वाला, २ पंक्तिका भेद करने वाला, ३ बिना काम सूत्र को जगाने वाला, ४ चलते व्याख्यान

में भंग डालने वाला और ५ गुणी जन का द्रव्य करने वाला, ये पांच महा पापी होते हैं.

‘मक्खी हाथ घिसकर शिर क्यों कूटती हैं ?’

( श्लोक-शाकुन्तलिकीशित )

देयं भोज धनं सुकृतिभिर्ना संचितव्यं कदा ।  
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपनेरद्यापि कीर्ति स्थिता ॥  
अस्माकं मधु दान भोगरहितं नष्टं चिरात् संचितं ॥  
निर्वाणादपि पाणिपाद युगलं घर्षत्य हो मक्षिका १०१

अर्थ— एक वक्त भोजराजा पण्डितों सहित सभामें बैठे थे, उस वक्त एक मक्खी भोज राजाके हाथ पर आ बैठी. राजा उसको देखता है तो वह हातों को मल मल कर शिर को कूट रही है, तब राजा ने पण्डित से प्रश्न किया, कि—यह मक्खि क्या करती हैं? तब पण्डित बोले कि—अहो राजेन्द्र! यह मक्खी इसा प्रकार मूचना कर रही है कि मैंने बहुत पुष्प के वृक्षों पर परिभ्रमण कर उन का रस चूस २ कर लाइ और मद्य (सहत) को का छंत्ता बनाया, उसकी रक्षा करनेको अहो निश उसपर बैठी रही, किसी को हाथ भी नहीं लगाने दिया और न मैंने खाया. अबी एक भिल आकर अग्नि आदि प्रयोग ने हमें दुःखी कर वहां से भगादि, और वह सब मद्य(सहत)वहां से लेगया, वहां से उड कर मैं आप के सम्मुख आ अर्ज करती हूं कि—जो भैरे जैसे

दुःखी नहीं होना हो तो, आपने पूर्व पुण्योदयसे राज क्रद्धि  
आदि बहुत धन प्राप्त किया है उसका शीघ्रही सद्व्यय कर  
दी जाये ! संचय करके रखना नहीं. दान के देने से करणराजा  
बलिराजा और विक्रम राजा इत्यादि राजाओं की कीर्ति जगत्में  
ताजी बनी हुई है. इतनी सूचना करने पर भी जो आप दान धर्म  
का समाचरण नहीं करोगे तो हमारे जैसीही स्थिति आपकी होगी!!

॥ सत्पुरुषों के सद्वर्णों ॥

॥ शाकुल विर्वाङ्मन ॥

धर्म तत्परता मुखे मधुरता शनैः समुत्साहिता ॥  
मित्रेण्यञ्जकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता ।  
आचारं शुचिना गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता ।  
रूपे सुन्दरता प्रभौ भजनिता सत्स्वेव सहृदयने ? ०२

अर्थः—धर्म में तत्परता, मुहमें [ वचन में ] गंभीरता,  
दान में उत्साह, मित्रोंके साथ निष्कपटपणा, गुरुका विनय, चित्तमें  
अति गंभीरपना, आचारमें पवित्रपना, सद्गुणोंपर प्रीति, शास्त्रका  
संपूर्ण ज्ञान, आकृति में सुंदरपना, और परमात्मा में भक्ति. यह  
सद्गुणों सत्पुरुषोंमें ही देखनेमें आते हैं ॥

॥ अंतिम प्रार्थना ॥

सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।  
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु. मा कश्चिदुःखमान्पुमान् ॥ ? ०३

अर्थः—सर्व जीवों सुखी होवो, सर्वजीवों आरोग्यवान बनो, सर्व जीवों अपने आत्माका कल्याण करो, और कोई भी प्राणी दुःखी न होवे यही प्रभुसे मेरी प्रार्थना है ॥

## ॥ प्रशस्ति ॥

शाकुंल विक्रांति वृचम् ॥

श्रीजैनाभिधदर्शने स्तुतियुते श्वेतम्बरारुख्ये मने,  
नामूरभूदिह कानजी मुनिवरः श्रीसाधुमार्गिब्रजे ।  
नद्रुच्छे सुविहार्यमोलक ऋषिःस्वस्मै पदार्थ मया,  
तेनेदं विविधो पदेश करणं प्रासंगिकं वर्णितम् ॥ १ ॥

अनुष्टुप

ग्वानदेशे ऽ धुनां ग्रामे, धूलियाख्ये स्थिते नच ।  
हिंदियाख्यां विधायोप-देशशतं प्रकाशितम् ॥ २ ॥  
रसाष्टाङ्गकुवर्षेच, विक्रमं शुभ विक्रमे ।  
नभस्य ऋषिपञ्चम्यां, शोभने रविचासरे ॥ ३ ॥

## ॥ त्रिभिः कुलकम् ॥

भावार्थः—विश्व में प्रशंसनीय और सुप्रसिद्ध श्रीजैनश्वे-  
तांबरसाधुमार्गी-स्थानकवासी महाजन्मे परमपूज्य श्री कहानजी  
ऋषिजी महाराज हुए. उनके संप्रदायमें शांतिपूर्वक पृथ्वीपर विचरता  
हुआ ऐसा मैने [ अमोलक ऋषिने ] स्वपरहितार्थ विविध प्रकारका  
उपदेश करनेवाला, प्रासंगिक ( जिसमें प्रसंगोचित्त श्लोका. संग्रह

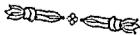
है), ऐसा यह ' उपदेशशतक ' हिंदीभाषा में अनुवाद कर के, पश्चिम स्वानदेश में धुलिया गाममें गृहकर विक्रम संवत् १०,८६ का भाद्रपद ऋषिपंचमी रविवार के दिन मूर्ण किया ( लिखकर तैयार किया ) ॥

॥ ॐ शांति शांति शांति ॥

## इति उपदेश शतकं

उन्नति अवनति का मार्ग  
आ गया है कर्म युग कष्ट कर्म करना. ए देशी

इस फूटने ही हम सभीको शक्ति हीन बना दिया । इस फूटने जातियों को-छिन्न भिन्न बना दिया, इस फूटने ही धर्म को ग्लानी पूर्ण बनादिया, इस फूटने ही देशको भी नष्ट भृष्ट बना दिया इस फूटका सिर फाँड कर अब एक्य करना चाहिये ॥ सब गच्छ वालों को परस्पर मेल रखना चाहिये । विद्या तथा बलका प्रचारण कार्य करना चाहिये ॥ इस मार्ग में जिन-धर्म का उद्धार करना चाहिये ॥





## पद्यात्मक-श्री महावीर स्तुति.

अच्छिस्सुणं समणा महणाया आगारिणो या परनितीयाया ॥  
 वेकेइ नेगन्त हिय धम्म माह्ण।अणेलिसं साहू समिक्खयाण्ण॥  
 पूछेगे साधु श्रावक आदि । गृहस्थ तथा कोइ परतीर्थ वादी ॥  
 कहा किस ने धर्म एकन्त हित कारी।अनोपम अच्छा कहा सम्यग् प्रकारी॥ १ ॥  
 कहंच णाणं कहं दंसण से । सीलं कहं नाय सुत्तस्स आसि ॥  
 जाणासिणं भिक्खु जहा तहेणं।अहासुत्तं बूही जहा णिसंतं॥  
 कैसे ज्ञानी कैसे दर्शनी कहिये । आचारी कैसे जातपुत्र भइये ॥  
 आप जानते हो जैसे थे वेम । जैसा सुना कही मुझे भी तैसे ॥ २ ॥  
 खयन्ने से कुसले महेसी।अणन्त नाणीय अणन्त दंसी ॥  
 जसं सिणो चक्खु पट्टियस्स।जाणाहि धम्मं च धिइंच पेहि  
 खेदके जाण थे कुशल महा ऋषि । अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी ॥  
 यशस्वी च भूत मोक्ष पन्थ देखे । जानते धर्मको धैर्य को पसे ॥ ३ ॥  
 उहुं अहेयं तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जेह पाणा ॥  
 से णिच णिचेहि समिक्ख पन्ने।दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥  
 ऊंची नीची रु तिरछी दिशा में ही । व्रत और स्थावर प्राणी जेही ॥  
 नित्य अनित्य सम्यग् तरेह जाना । दीपासा धर्म सभा में बखाना ॥ ४ ॥  
 से सन्वदंसी अभिभूय णाणी।णिरामगन्धे धियमे तिनप्पा ॥  
 अणुत्तरे सन्व जगंसि विज्जं । गंधा अतीने अभय अणाऊ ॥

सव देखा न हरासके ज्ञाता । सर्व दोष रहित धैर्य में स्थिर आता ॥  
 सर्व जगत् की उत्तम विद्या जाने । अभय अनायु भेदी ग्रन्थी ताने ॥ ५ ॥  
 संभूइ पन्ने अणिण अचारी । ओहंतरे धीरे अनन्त चकखु ॥  
 अणुत्तरे तप्पइ सूरिणवा । वडरोयणी देव तमं पगासे ॥ ६ ॥  
 दीर्घ प्रज्ञी अप्रातिवन्ध विहारी । भवेष तीरे धीर अनन्त नेत्र धारी ॥  
 श्रेष्ठ तपे जग में सूर्य समान । मिथ्या तम नशाने अग्निसे जान ॥ ६ ॥  
 अगुत्तरं धम्म भिणं जिणाणाणेया मुनि कासव आसुपन्ने ॥  
 इन्देव देवाण मह्हाणुभावे । सहस्सणेता दिचिणं विसिट्ठे ॥  
 प्रधान धर्म के नायक जिनेश्वर । न्यायी मुनिधर दीर्घ बुद्धिधर ॥  
 देविन्द्र देवो मे महा भाग्यधान । हजार आँखो देवों में श्रेष्ठ जान ॥ ७ ॥  
 सेपन्नया अक्खय सागरे वा । महोदही या वी अणन्त पारे ॥  
 आणाइ लेया अकसाइ भिक्खु । सक्केव देवा द्विवइ उजुइमं ॥  
 अश्रय ज्ञानी समुद्र नीर जैसे । सयंभुरमण अथन्त अपार तैसे ॥  
 रत्न माल रहित वे अकपाइ यति । सकेन्द्र की जैसी दीपती जोती ॥ ८ ॥  
 से वीरीण पडिपुन्न वीरीण । सुदंसणेवा णग सच्च सेट्ठे ॥  
 सरालण वा सि मुदागरे से । विरायण णेग गुणो वयेय ॥ ९ ॥  
 वे प्रतिपूर्ण बलवन्त महावीर । सर्व पर्वतों में श्रेष्ठ मेरुसे धीर ॥  
 देवों भी वहाँ रहे आनन्द पाधे । अनेक गुणों से विराजे शोभावे ॥ ९ ॥  
 सयं सहस्साण उ जोयगाणं । तिकण्डगे पण्डग वे जयन्ते ॥  
 से जोयणे णवणवाते सहस्से उध्ठु सिसनो हेट्ठे ॥

सो सहस्र योजन का उंचा जान । त्रिकण्ड पद्मगवनइजा समान ॥  
 निन्याणु सहस्र योजन जमीसे ऊंचा एक सहस्र योजन पृथ्वी में गाँचा ॥ १० ॥  
 पृष्ठे णभे चिट्टइ भूमियठिणजं सूरिया अणुपरि चट्टयन्नि ॥  
 से हेमवन्ने यहु नंदणया ॥ जंसी रनि वेदयनि महिन्दा ॥ ११ ॥  
 म्परी आकाश वो जमीसे गहीया । सूर्य सदा जास प्रदक्षिणा दइया ॥  
 सुवर्ण वरण बहुत आनन्द करी । यहाँ साता पाने महेन्द्र भारी ॥ १२ ॥  
 से पन्वण सह पद्माप्पगासे । विरायती कंचन मट्ट यन्ने ॥  
 अणुत्तरे गिरि सुयपन्व दुग्गे ॥ गिरो वरेसे जलिण्य भोम ॥ १३ ॥  
 वो पहाड मोले नामोसे प्रकाशे । अति शोभितो कंचन दग भादो ॥  
 विपम मेवला से अति प्रधानो । पृथ्वी के सब पहाडोंमे दिव्य जानो ॥ १४ ॥  
 महिइ मझंमि ठिय णगिन्दे । पन्नाय ते सूरिये सुद्धलेसे ॥  
 एवं सिरिणउ स भूरि चन्ने ॥ मणोरमे जावइ अर्चनीमाली ॥ १५ ॥  
 पृथ्वीके मध्य में नगेन्द्र रहा है । सूर्य मरिखा निर्मल कहा है ॥  
 इत्यादि लक्ष्मी से अनेक वरणा । दिन कर सम ज्योति मनहरणा ॥ १६ ॥  
 सुदंसणंस्से व जसो गिरिस्स । पयुचइ महनो पन्वयस्स ॥  
 गतोवमे समणे नायपुत्ते । जानी जसो दंसण नाण सीले ॥ १७ ॥  
 सुदर्शन पर्वत सर्व गिरी में । कहा है बडा सर्व गिरी सिरी में ॥  
 यह ओपमा साधु श्री महावीर । जाति यज्ञ ज्ञान दर्शन जीव सिरे ॥ १८ ॥  
 गिरि वरेवा निसहाय याणा ॥ ख्ययेव सेट्टे वलयायताण ॥  
 तओवमे से जग भूइ पद्मोमुणीण मजे तमुदाह पद्मे ॥ १९ ॥

म्गिरां में निपथ श्रेष्ठ जाणो । गोष्ठे गिरां में रूचक कौ बन्नाणो ॥  
 ह औपमा जगभे दोष बुद्धिवंत । मुनियोंमें वीर महाबुद्धि मन्त ॥ १५ ॥  
 अणुचारं धम्म सुहरइत्ता । अणुचारं ज्ञाण चरं क्षियाइं ।  
 सुसुक्क सुक्क अपगन्ट सुक्कासांविन्दु वेगंतय दान सुक्कां ॥ १६ ॥  
 वंसे उत्तम धर्म को उच्चार । सर्वमें उत्तम ध्यान को धारा ॥  
 ज्वल से उज्वल अतिही उज्वल । शंख दूध चन्द्रमा से अनि वीमल ॥ १६ ॥  
 अणुचारंगं परमं महत्सो । असेस कम्मं सविसोह इत्ता ।  
 सद्धिगतं साइ मणंत पत्तानाणेण सीलेण यं दंसणेण ॥ १७ ॥  
 वि मुनियों में प्रधान महा मुनि । निर्मल हुवे सब कर्म रज धुनि ॥  
 तद्धो शाश्वत अनन्त सुखपाया । ज्ञान दर्शनले चारित्र से सिधाया ॥ १७ ॥  
 सखे मुणाय जह सामलीया । जंसी रति वेदयन्ति सुवन्ना ॥  
 णेसु चा णंदण माह संद्वंभाणेण सीलेण य नूति पत्तो ॥ १८ ॥  
 शों में उत्तम शामली जानो । उम पे सुवर्ण कुमार रहा सुख मानो ॥  
 नों में श्रेष्ठ नंदन बनको बखानो । ज्ञान शील महाबुद्धि ल्यों वृद्धपानो ॥ १८ ॥  
 णियेव सदाण अणुत्तेर ओचन्दोव तारण महाणु भावे ॥  
 ण्येसु चा चंदन माहु संद्वंभं मुणीणं अपद्धिन्न माहु ॥ १९ ॥  
 जारव शब्द शब्दों में प्रधान । चन्द्र ताराओं में महानुभव मान ॥  
 ण्यं में श्रेष्ठ है वावना चन्दन । ल्यों वीर मुनियोंमें अप्रति बन्धन ॥ १९ ॥  
 तहा सयंसु उदहीण संद्वंभाणेसु चा धरणिन्द माहु संद्वं  
 वोओदण वा रसवे जयन्तोतयो चहाणे मुणिये जयन्त ॥ २० ॥

ज्यो सयंभुराज समुद्रों में जेष्ट । धरणिन्द्र नाग कुमारों में श्रेष्ठ ॥  
 इक्ष्वाका रस सब रस में प्रधान । तप में प्रधान ज्यों धारमुनि जानो ॥ २० ॥  
 हृत्प्रीति सुपरायण माहु पाणसीहो मियाणं सलिलाण गंगा ॥  
 पंचमी सुवा गरुले वेणु देवोणिद्व्याण वादी णिह् णायपुत्तो २१  
 हस्तीयों में परावण कदा श्यामी । मृगोंमें सिंह नदीमें गङ्गा नाभी ॥  
 पक्षियों में गरुड वेणु देव मोटा । त्यां निर्वाण वादी में सिद्धार्थ बेटा ॥ २१ ॥  
 जोहे सुणाए जहा वीससेणापुत्तेसु वा जहा अरिबिन्द माहु  
 ग्वर्वाण सेट्टे जहा दन्त्य भेइसीण सेट्टे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥  
 जोधा ओं में श्रेष्ठ है वामुदेवो । पुण्यों में अरविंद कमल लेवो ॥  
 क्षत्री यों में श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा । ऋषियों में श्रेष्ठ बृद्धमान झाजा ॥ २२ ॥  
 दाणाण सेट्टे अभय प्ययाणं । सधेसु वा अणवज्जं घयन्ति ।  
 नयेसु वा उत्तम वंभचेरंलोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥  
 दान में श्रेष्ठ अभय को बखाना । मत्स्य बचनों में भी निर्वधेण माना ।  
 तप में उत्तम है ब्रह्मचर्य सूत्र । लोकों में उत्तम साधु ज्ञात पुत्र ॥ २३ ॥  
 टिड्ढण सेट्टा लवसत्तमावा । सभा सुहम्माव सभाण सेट्टा ॥  
 निद्व्याण सेट्टा जहा सन्न्य धम्मपा । णणायपुत्ता परमत्थो नाण  
 आयुष्य श्रेष्ठ है सर्वार्थ सिद्धका । सभा में सुधर्म श्रेष्ठ मुर रिद्धका ।  
 मोक्ष दाता धर्म सब धर्मोंमें भारी । अन्य नहीं ज्ञात पुत्र सा ज्ञान धारी ॥ २४ ॥  
 पुढोवमे धुणइ विगय गेहि । न सणिहिं कुच्चइ आसूपन्ने ।  
 नरितु समुदं च महाभवां च । अभयं करे वीर अणन्त चक्कम्  
 पृथ्वी परे देह ममत्त ल्यागी । दीर्घ प्रज्ञी अक्कही वीतरागी ।

नौरे समुद्र महा भवोध रूप । अनन्त चक्षु अमय करे वीर भूप ॥ २५ ॥

कोहंच माणंच तंहेव मायं । लोभं चउत्थं अज्ञत्थ दोसा ॥

ए आणीवंता अरहा महेसीण कुब्बइ पाव ण कारवेइ ॥२६॥

तैसेही क्रोध मान और माया । लोभ चीथा आदि आत्म दोषों पाया ।

सर्व को स्वप्ना हूवे अहं महा ऋषि । न करे करावे पाप न धरे खुशी ॥ २६ ॥

किरिया किरियं वेणइयाणु वायं ।

अणाणी याणं पडियच्च ठाणं ॥

सेसच्च वायं इतिवेय इताउवठाए संजम दिह् रायं ॥ २७ ॥

किरीया अकिरीया विनय अज्ञानी । चारों कुवादि दुर्गति दाता आनी ।

उन सब बादीको जान के छोडाअहो निश मंयम में त्रियोग जोडे ॥ २७ ॥

से वारिया इत्थी सराइ भनाउवहाणयं दुःखख स्वय ठयाय

लागं विदिता आरं पारंचासच्चं पभु वारिया सच्चवाचारं ॥

वो वीर नारी निशी भक्त त्यागी । दुष्कर करणी से गये दुःख भागी ।

लोक परलोक सब जानन हार । प्रभु ने रोके सब आश्रव द्वार ॥ २८ ॥

साचाय धम्मं अरहंत भासियासमाहितं अइ पदो विगुद्धं ॥

नं सदहन्ता जणा अणाजाइन्देवदेवा हिव आग मिस्संति ॥

तिथेमी ॥२९॥ इति विरत्थुइअणं सम्मत्तं ॥

सुना धर्म ऐसे अर्हत का फरमाया । अर्थ पाठ शुद्ध सम हित से दर्शाया ।

इमे श्रद्ध कर हुये अजरा अमर । केइ इंद्र देव हो आगे सिद्धीवर ॥ २९ ॥



## कळश.

श्री महावीर गुण गणधर करमये ॥

नस्यानुसार अमोलक ऋषि गाये ॥

अशुद्धि विद्वजन शुद्ध कराई ॥

पढते स्तूनने महल होवे सादाई ॥ १ ॥

॥ इति श्री महावीर स्तुति प्रद्यात्मक समाप्तम् ॥

पंच महव्यय सुव्यय मूलसमणा मणाइल साह सुचिन्न ।  
वेर वेरामण पञ्जवसाणां सव्य समुद्र महोदधि तित्थं ॥१॥

पांचों महाव्रत सव सूत्रन मूल । थावक के दारह व्रत अनुकूल ॥

वेर विरोध परिणामों से समाये । वे सव जगोदर्धाका अंत पाये ॥ १ ॥

नित्थं करे हिं सुदेसिय मग्गं ।

नरग तिरिकख विवज्जिय मग्गं ॥

सव्य पवित्तं सु निम्मिय सारं ।

सिद्धि विमाणं अवगुय दारं ॥ २ ॥

तीर्थ कसों ने अच्छा उपदेशा मार्ग । टालेय दुर्गति तीर्थच नग ॥

मर्व से पवित्र सर्व का सार । सिद्ध गति के खुले किये द्वारा ॥ २ ॥

देव नरिन्द नमसिय पूयं ।

सव्य जगुत्तम मंगल मग्गं ॥

दुद्धरी संगुण नायक मेगं ।

माक्ख पहस्स चडिंसग भूयं ॥ ३ ॥

देवेंद्र नरेंद्र नेम उस नरको । सर्व जगोत्तम मार्ग आचर को ॥

बहु धर्म अपार गुणी ज्यों असमानामनोंतम मोक्षमार्ग मुगट समान ॥ ३ ॥

## श्रीनमि पवज्या अध्ययन.

चइज्जण देवलोगाआं । उचचसो माणुसम्मि लोग्गि ॥

उयसन्न माहणि ज्जो । सरइं पोरणिणं जाइं ॥ १ ॥

चवकर देवलाक से आये । मनुष्य लोक में जन्मज पाये ॥

मोहणीय कर्म उपसमाये । जाति स्मरण ज्ञान प्रगटाये ॥ १ ॥

जाइं सारत्तु भयवं । सह संबुद्धो अणुत्तरे धम्ममे ॥

पुत्तं अचित्तु रज्जे । अभिणिकम्मइं नमि राया ॥ २ ॥

जातिस्मरण पाकर भगवंत । धर्म प्रधान, स्वयमेव समझत ॥

पुत्र राज पर स्थापन कीना । नमी रायजी संयम लीना ॥ २ ॥

सो देव लोग सरिसे । अन्तेउर वरगओ वरे भोग ।

भुजित्तु ननिराया । बुद्धो भोगे परिच्चयइं ॥ ३ ॥

जिन के थे देव लोक समान । अन्तेउर वगे भोग प्रधान ॥

भोगवते थे उसे नमिराय । तत्त्वज्ञ वने दिये छिटकाये ॥ ३ ॥

महिले सपुर जणवये । बल मारोहच परियणं सत्वं ।

चिच्चा अभिज्जिकवता । एगंत मीहट्टिओ भयवं ॥ ४ ॥

जनपद देश युत मिथिला नगरी । परिवार सेना सब अन्तेउरी ॥

छांड के निकले वने में गये । एकान्त में स्थिर भगवंत रये ॥ ४ ॥

कोलाहलग वंभूयं । आसी मिहिलाइ पच्चयंत्ताम्मि ॥

नइया रायरिसिम्मि । नमिम्मि अभिज्जिकवतांत्ताम्मि ५

कोलाहल भूत शब्दज मया । दीक्षा काज मिथिला पुरी मया ॥

उप वक्त ने राय ऋषि । नमिजी निकले गये होस्तुपि ॥ ५ ॥



अब्भृष्टिं रायरिसिं । पवञ्जा ठाणमुत्तमं ॥  
 सको माहण स्वेषण । इमं वपण मब्बवी ॥ ६ ॥  
 राजरुपि सावधान भये । दीक्षा के उत्तम स्थान रये ॥  
 शत्रुद्र ब्राह्मणका रूप धर । करने लगे प्रथम इसपर ॥ ६ ॥  
 किन्नु भो अज्ज मिहिलाए । कोलाहलग संकुला ॥  
 सुच्चंति दारुणा सद्दा । पामाण सु गिह्यु अ ॥ ७ ॥  
 अहो किसलिये आज मिथिला माही । कालाहल व्याकुल भयाइ ॥  
 दारुण शब्द यह रहे मुनाइ । प्रगाद गृह इत्यादि ठाइ ॥ ७ ॥  
 एअमट्टं निसामित्ता । हेउ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नमि रायरिसी । देविन्दं इणमब्बवी ॥ ८ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण मे प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमि ऋषि राय । देवेन्द्र से यों दरशाय ॥ ८ ॥  
 मिहिलाए चेइए वच्छे । सीअच्छाए मणोरमे ।  
 पत्त पुप्फ फलोवेए । चहणं यहू गुणे सया ॥ ९ ॥  
 मिथिला के वन मे था वृक्ष । शतिल छाव मनोरम रक्ष ॥  
 पत्र पूष्य फल से उपपेत । बहु पक्षी आश्रय गुणशेत ॥ ९ ॥  
 वाएणं हीरमणम्मि । चेइअम्मि मणोरमे ॥  
 दुहिआ असारणा अत्ता । एण कंदानि भोग्गगा ॥ १० ॥  
 वायु वेग से स्थिर थाय । वन का मनोरम वृक्ष गिराय ॥  
 दुःखी अशरण आर्तंत । भो ! इन्द्र ये पक्षी आरंडत ॥ १० ॥  
 एअमट्टं निसामित्ता । हेउ कारण चोई ओ ॥  
 तओ नमीरायरिसिं । देविन्दो इण मब्बवी ॥ ११ ॥

- उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ।  
उसही वक्त नमिऋषि राय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ११ ॥
- एस अग्नि अ वाऊ अ । एअं डज्झइ मंदिरं ॥  
भयवं अंतेउरं तेणं । कीसणं नाय पिकसह ॥ १२ ॥  
यह अग्नि और वायु प्रयोग । ये मंदिरादि बने बन्ही भोग ।  
अहो भयवं अंनेपुर तुहारो । क्यां नहीं आप नयन निहारो ॥ १२ ॥
- एअमट्टं निसामिता । हेऊ कारण चाई ओ ॥  
नआं नमीरायरिसी । देविन्द्रं हणमव्वर्वा ॥ १३ ॥  
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ।  
उसही वक्त नमिऋषि राय । देविन्द्र से यों दरशाय ॥ १३ ॥
- मुहं वसामो जीवामो । जेसीं मो नत्थिकिंचणं ॥  
मिहिलाए डज्झमाणीए । नमे डज्झइ किंचणं ॥ १४ ॥  
मुख में बसते जाँवे हँ हम । उस में नहीं भरी किंचित रकम ॥  
मिथिला नगरी याह जो जले । उस में भरा किंचित नहीं बले ॥ १४ ॥
- यत्त पुत्त कलत्तरस । निव्वावारस भिकखुणो ॥  
पिअं नविज्जणकिंचि । अप्पियं पि न विज्जण ॥ १५ ॥  
मेने पुत्र कलत्र त्यागे । सब व्यापार विन साधु सागे ॥  
मियकारी तम किंचित नाही । अप्रियकारी भी नहीं कांही ॥ १५ ॥
- यहखु मुणिणो भहं । अणगारस्स भिकखुणो ॥  
सव्व आ विप्प सुक्कस्स । एगतां मणुपस्स ओ ॥ १६ ॥  
यहत मुखी साधुजी रहते । घर रहित भिक्षुक हँ जे ते ॥  
सबे परिग्रह रहित भया । एकांन आत्म सुख देव रया ॥ १६ ॥

एवमष्टं निसामिता । हेतु कारण चोड ओ ॥  
 नओ नमिं रायरिसिं । देविन्द्रो इण मव्ययी ॥ १७ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिऋपि राय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ १७ ॥  
 पगारं कारइत्ताणं । गोपुरद्वा लगाणि ओ ॥  
 ओसूलग सयग्धीओ । तओ गच्छसि ग्वात्तिआ ॥ १८ ॥  
 नगर चौ और किल्ला बन्धाय । दरवाजे रु झरोसे लाय ॥  
 चौ और खाद सत्थनी स्थाप । पीछे दीक्षा लेना आप ॥ १८ ॥  
 एवमष्टं निसामितां । हेतु कारण चोड ओ ॥  
 नओ नमिरायरिसी । देविन्द्रं इणमव्ययी ॥ १९ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिऋपि राय । देविन्द्र से यों दरशाय ॥ १९ ॥  
 सद्धं च नगरं किच्चा । नव संवर मंगलं ॥  
 खांती निकण पगारं । तिगुत्तां दुप्पधां सरं ॥ २० ॥  
 श्रद्धा रूप तो नगर बनाया । त्रप सम्बर आगिळ लगाया ॥  
 क्षमा रूप मजवूत हे कोट । तीन गुप्ति गुप्त न लगे चोट ॥ २० ॥  
 धणुं परकम्मं किच्चा । जीवंच इरिअं सया ॥  
 धिट्ठं च केअणं किच्चा । सद्धं पत्ति मंधा ॥ २१ ॥  
 धर्म में पराक्रम रूपी धनुष्य । इर्या समिति जीवा प्रकर्ष ॥  
 धैर्य रूपी मूठ लगाई । सत्य रूप बन्धन से बन्धाई ॥ २१ ॥  
 नव नाराय जुत्तेणं । भित्तुणं कम्म कंचुअं ॥  
 मुणि विगय संगामो । भवाओ परि मुच्चइ ॥ २२ ॥

अभ्यन्तर तप बाण सहित । भेदे कर्म शत्रु खचित ॥  
 मुनि ने तजा द्रव्य संग्राम । भवसे अम से पाये विराम ॥ २२ ॥  
 एअ महं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नामि रायरिसि । देविंदो इणमव्यवी ॥ २३ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिऋपि राय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ २३ ॥  
 पासाण कारइत्ताणं । वद्धमाण गिहाणि अ ॥  
 बालग पोइ आ ओ अ । त ओगच्छसि ग्वत्ति आ ॥ २४ ॥  
 विविध प्रकारे महल बनाय । बृद्धमान गृह भी कराय ॥  
 वायु जल भुवन सजाय । फिर दीक्षा लो अत्रो रायं ॥ २४ ॥  
 एअ महं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नामि रायरिसी । देविंदं इण मव्यवी ॥ २५ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिऋपि राय । देविन्द्र को यों दरशाय ॥ २५ ॥  
 संसगं ग्वलु सो कुणइ । जो मग्गे कुणइ घरं ॥  
 जत्थेव गंतुमिच्छेत्ता । तत्थे कुयिज्ज सासायं ॥ २६ ॥  
 जिस को जाने का संशय होय । रस्ते में घर करता सोय ॥  
 जो जानेको इच्छे नर । वहां करे वह शाश्वत घर ॥ २६ ॥  
 एअमहं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नमि राय रिसि । देविन्दो इणमव्यवी ॥ २७ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिऋपिराय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ २७ ॥

मामोसे लोमहारे अ । गंठी भेग अ तकर ॥  
 गरस्स खेम काजगं । नओ गच्छसि खत्तिया ॥ २८ ॥  
 स्कार टग छटारे ताई । ग्रन्थी छेदक चोरों नशाइ ।  
 गर देश में खेम बरताय । फिर दीक्षा लो क्षत्रीराय ॥ २८ ॥  
 अमट्टं निसमित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नमी रायरिसी । देविन्द इणमव्यवी ॥ २९ ॥  
 उक्त प्रकारसे अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ।  
 उसही वक्त नमि ऋषिगय । देविन्द्र से यों दशराय ॥ २९ ॥  
 असइं तु मणुसेहिं । मिच्छा दंडो पजुज्जए ॥  
 प्रकारिणोत्थ यज्झंति । मुच्चइ कारगो जगो ॥ ३० ॥  
 संसार में नर अनेकवार । झूठा दंड देते दुःख कार ।  
 ताहुकार कों दंडित करे । चोरी करता कों परिहरे ॥ ३० ॥  
 अमट्टं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नमि रायरिसिं । देविन्दो इणमव्यवी ॥ ३१ ॥  
 उक्त प्रकारे अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिऋषि राय । को देविन्द्र यों दशराय ॥ ३१ ॥  
 जे केई पथिया तुब्भं । न नमंति नराहिवा ॥  
 वसे ते ठावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ ३२ ॥  
 जो जो कोई राजा तुम तांय, अहो नराधिय नम ते नाय ॥  
 उनको पहिले बस में लाय, फिर दीक्षा लो क्षत्री राय ॥ ३२ ॥  
 अमट्टं निसमित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नमि रायरिसी । देविंद इण मव्यवी ॥ ३३ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ मुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमि ऋषि राय । देविन्द्र से यों दर थाय ॥ ३३ ॥  
 जो सहस्रां सहस्राणं । संगामे दुज्जणं जिणे ॥  
 णं जिणिज्ज अप्पाणं । एस से परमो जओ ॥ ३४ ॥  
 जो दश लक्ष मुभटों भणी । दुर्जय को जीते, एक धणी ॥  
 एक जीते निजात्म तांय । परम जयवंत वही कहाय ॥ ३४ ॥  
 अप्पाण मेव जुज्झाहि । किं ते जुज्झेण यज्झओ ॥  
 अप्पाण मेव अप्पाणं, जइत्ता सुहंमेहण ॥ ३५ ॥  
 निजात्म मे कर संग्राम । अन्य से लडने का क्या काम ॥  
 शुद्धात्म अशुद्धात्मसे लडे । जीते के मुख मुक्ति के बरे ॥ ३५ ॥  
 पांचिदियाणि कोहं माणं मायं नहेव लोहं च ॥  
 दुज्जयं चैव अप्पाणं । सन्वमप्पे जिणं जिअं ॥ ३६ ॥  
 पांचों इन्द्रिय क्रोध के संग । मान माया लोभ से जंग ॥  
 दुर्जय अपने ए शत्रु जब जीते उमने जीते रिपु सब ॥ ३६ ॥  
 एयमट्टं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नमि रायरिसिं । देविंदो इण मव्वयी ॥ ३७ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ मुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमि ऋषिराय । जो देविन्द्र यों दरगाय ॥ ३७ ॥  
 जइत्ता विउले जणणे । भोइत्ता समण माहणे ॥  
 दच्चा भुच्चा य जट्टाय । तओ भच्छसि म्वत्ति आ ॥ ३८ ॥  
 विविध प्रकार के यज्ञ कराय । संन्यासी ब्राह्मण जिमाय ॥  
 देकर दान भोग्य के भोग । फिर क्षत्राग्रेज नेमा गेजे ॥ ३८ ॥

एअमट्टं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 नओ नमी रायरिसी । देविन्दं इण मव्ववी ॥ ३९ ॥  
 उक्त प्रकारसे अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिक्कपि स्य । देविन्द्र से यो दरशाय ॥ ३९ ॥  
 जो सहस्सं सहस्साणं । मासे मासे गवं दए ॥  
 तस्सावि संजमो से ओ । अदितस्सावि किंचणं ॥ ४० ॥  
 जो दस दस लक्ष गाय के तांय । महिने महिने दान दिराय ॥  
 उसको भी संयम श्रेयकार । न दे उसे मी श्रेय संयम मार ॥ ४० ॥  
 एअमट्टं निसामिसामि । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 नओ नमि रायरिसी । देविन्दो इण मव्ववी ॥ ४१ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिक्कपि गय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ४१ ॥  
 घोरासमं चइत्ता णं । अन्नं पत्थेसि आसमं ॥  
 इहेव पोसह रओ । भवाहि मणुआ हिवा ॥ ४२ ॥  
 दुष्कर ग्रहस्थाथम को छोड । चारित्राथम लेने की कोड ॥  
 घर में रही पैपधादि ठाय । अहो नृपति मनो यही वाय ॥ ४२ ॥  
 एअमट्टं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥  
 नओ नमी रायरिसी । देविन्दं इणमव्ववी ॥ ४३ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी ! हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उसही वक्त नमिक्कपि गय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ४३ ॥  
 मासे मासे उ जो वालो । कुसग्गेणं तु अंजए ॥  
 न सो सुअक्कवाय धम्मस्स । कलं अग्घद सोलसि ॥ ४४ ॥

अज्ञानी तप करे मास मास । कुशाग्र जेता पारणे मास ॥  
 नैयम धर्म तुल्य नहीं आवे । सोलमी कला लायक नहीं थावे ॥ ४४ ॥  
 एअमट्टं निसामित्ता । हेउ कारण चोइ ओ ॥  
 तओ नमिं रायरिसीं । देविन्दो इणमच्चवी ॥ ४५ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उमही वक्त नमि ऋपिराय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ४५ ॥  
 हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तां । कंसं दूसं च वाहणं ॥  
 कोसं षट्ठाचइत्ता णं । तओ गच्छसि ग्वत्तिआ ॥ ४६ ॥  
 मणि मोती चोंद्री और मुवर्ण । धातु वस्तन वल और वाहन ॥  
 प्रथम इन मे भगे खजाना । अहो क्षत्रीराज फिर तुम जाना ॥ ४६ ॥  
 एअमट्टं निसामिना । हेउ कारण चोइओ ॥  
 तओनमी रायरिसी । देविन्दं इणमच्चवी ॥ ४७ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥  
 उमही वक्त नमिऋपि राय । देविन्द्र से यों दरशाय ॥ ४७ ॥  
 सुवण्णं रूपस्स पच्चर्या भवेसिआहु केलाससमा असंग्वया ॥  
 नरस्स लुद्धस्स न नेहि किंचिइच्छ हु आगाससमा अणंतिआ ॥  
 सोने रूप के पर्यंत होय । कभी केलास से असंख्य सोय ॥  
 लोभी को देते नहीं तृपताय । तृष्णा अकाशसी अनन्त कहाय ॥ ४८ ॥  
 पुढवी साली जवाचेव । हिरण्णं पसूभिस्सइ ॥  
 पडिपुष्णं नाल मेगस्स । इइ विज्ज तवंचरे ॥ ४९ ॥  
 पृथ्वी शाल जवादि धान । रूपादिधन पशु भी सब जान ॥  
 सब दिये एक को तृप्ति न करे । ऐसा जान संयम आदरे ॥ ४९ ॥



एअमट्टं निसामित्ता । हेउ कारण चोइओ ॥  
 तओनामिं रायारिसिं । देविन्दो इणमव्ववी ॥ ५० ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनो । हेतु कारण से प्रेरित बर्ना ।  
 उसही वक्त नमि ऋषिराय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ५० ॥  
 अच्छेरगम व्भुदए । भोए चयसि पत्थिवा ॥  
 असंते कामे पत्थेसि । संकप्पेण विहण्णसि ॥ ५१ ॥  
 अहो मुझ भूपति आश्चर्य आय । अद्भुत भोगों को तजी के जाय ॥  
 अन होत भोग इच्छा करी । संकल्प से रखे हानी हो तरी ॥ ५१ ॥  
 एअमट्टं निसामित्ता । हेउ कारण चोइओ ।  
 तओ नमीरायारिसी । देविन्दं इणमव्ववी ॥ ५२ ॥  
 उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बर्ना ॥  
 उसही वक्त नमि ऋषिराय । देविन्द्र से यों परमाय ॥ ५२ ॥  
 सल्लं कामा विसं कामा । कामा आसी विसोवमा ॥  
 कामे पत्थे माणा । अकामा जंति दुग्गइं ॥ ५३ ॥  
 काम भोग शल्य विष समान । आसी विष अही की उपमान ॥  
 काम भोग की इच्छा करे । विन भोगे ही दुर्गति में पडे ॥ ५३ ॥  
 अहेवयइ कोहणं । माणेणं अहमागइ ॥  
 माया गइपडिग्घा ओ । लोहा ओ दुह ओ भयं ॥ ५४ ॥  
 नीची गति में क्रोध से जाय । मान अधर्म गति में ले जाय ॥  
 माया से उत्तम गति का नाश । लोभ से दोनों भव में त्रास ॥ ५४ ॥  
 अब उडिझ्झण माहण रूचं । विउरू विऊण इंदत्तं ॥  
 वंदइ अभिन्धुणं तो । इमाहिं महुराहिं यग्गुहिं ॥ ५५ ॥

त्याग दिया ब्रह्मणा का रूप। वैश्व कर इन्द्र का स्वरूप ॥  
 वंदन कर के स्तुति करे। मयूर वचन इसपर उचरे ॥ ५५ ॥  
 अहो ते निज्जि ओ कोहो। अहो ते माण पराजिओ ॥  
 अहो ते निरकिया माया। अहो ते लोहो वसोक ओ ॥ ५६ ॥  
 अहो आश्वर्य तुम जति कोष। आश्वर्य हरा दिया मान योध ॥  
 अहो आश्वर्य माया दूर हरी। अहो आश्वर्य तृष्णा वश करी ॥ ५६ ॥  
 अहो ते अज्जयं साहु। अहो ते साहु महयं ॥  
 अहो ते उत्तमा ग्वंनो। अहो ते मुनि उत्तमा ॥ ५७ ॥  
 आश्वर्य तुमारी गरलता श्रेष्ठ। आश्वर्य तुमारा भादिव जेष्ठ ॥  
 आश्वर्य तुमारी उत्तम क्षमा। आश्वर्य निलोभता मेरमा ॥ ५७ ॥  
 इहेसि उत्तमो भवे। पेचा होहिसि उत्तमो ॥  
 लागुत्तं पुत्तं ठाणं। सिद्धि गच्छसि नीरओ ॥ ५८ ॥  
 यहां भी उत्तम हो भगवंत। आगे भी उत्तम होवोगे संत ॥  
 लोकते उत्तमात्तम स्थान। जावोगे मोक्ष करी कर्म हान ॥ ५८ ॥  
 एवं अभित्युणं तो। रायरिसिं उत्तमाइ सद्धाए ॥  
 पायाह्णिणं कुणंतो। पुणो पुणो वंदए सज्जो ॥ ५९ ॥  
 उक्त प्रकारे स्तुति करी। राज कपि की उत्तम श्रद्धा धरी ॥  
 प्रदक्षिणा वर्त करता तेह। बारम्बार शक्रेन्द्र वंदे ए ॥ ५९ ॥  
 नो वंदिऊण पाए। चक्रकुंठ लक्ष्मणं मुनिवरस्स ॥  
 आगासणुप्पइ ओ। ललिअं चवत्त कुंडल तिरिडी ॥ ६० ॥  
 फिर उभय पद वंदन किए। चक्राकुंठ अंकित मुनि के जिण ॥  
 आकाश मार्गें स्वस्थान गये। ललित कुंडल मुगट चमक रये ॥ ६० ॥

नमी नमेइ अष्पाणं । सक्खं सक्केण चोइ ओ ॥  
 चइऊण गेहं विदेही । समणणे पज्जुवाट्ठिओ ॥ ६१ ॥  
 नमिराय ऋपि आत्म नमाइ ! शक प्रत्यक्ष प्रेरं चलेनाइ ॥  
 विदेह देश घर त्यागन करी । शुद्ध चारित्र उद्यम समाचरी ॥ ६१ ॥  
 एयं करिंति संबुद्धा । पंडिआ पविअक्खणा ॥  
 विणियहंति भोगेसु । जहासे नमी रायरिस्सि ॥ ६२ ॥  
 इस प्रकार तत्त्वज्ञ करे । पंडित विचक्षण गुण आदरे ॥  
 काम भोग से निवृत्तो पाय । नमी राज ऋपि ज्यो मुखी थाय ॥ ६२ ॥  
 नमि राज ऋपि गुण जिन कथोनस्यानुंसार अमोल ऋपिरचे  
 अशुद्धो विज्ञजन लेना सुधार । पढते सुनते होवे मंगलाचार  
 श्री वीराब्द चौबीस सो पच्चावन । चवदश कृष्णा रवी पुष्य श्रावन ॥  
 पांच माधु मुखे रहे चौमास । धुलिया शहर खानदेश खास ॥ ६३ ॥



